भारत सरकार द्वारा विज्ञापनों के लिए मान्यता प्राप्त

आरएनआई पंजीयन RAJHIN/2016/72902

डाक पंजीयन RJ/ UD/ 29-150/ 2020-2022

शब्द रंजन

संस्थापक एवं संरक्षक डॉ. महेन्द्र भानावत

विचार एवं जनसंवाद का पाक्षिक

वर्ष 7 | अंक 01 | उदयपुर शनिवार 15 जनवरी 2022 | पेज 8 | मूल्य 5 रू.

बंशी ने बजाई बंशी, बंशीवारे घाट पर

बंशीलाल बेजोड़ बांसुरी वादक थे। अपने जीवनकाल में उन्होंने सर्वाधिक बंशी की तान पीछोला के गणगौर घाट पर थबोले खाती लहरों को सुनाई। उस तान के प्रभाव से लहरें उनको स्पर्श करतीं। कभी-कभी लहरें उनकी तान से इतनी सम्मोहित हो जाती कि हिलोरे खाने लगती तब उस तरंग में बंशीलाल भी अपनी बांसुरी के हिलोरों के हलरावण में हिलोलते नजर आते।

बंशीलाल आमेटा (व्यास) ने अधिक उम्र नहीं पाई परन्तु अपनी हैसियत से बड़ा काम कर दिखाने में सदैव आगे रहे। उन दिनों बागोर की हवेली बड़ी प्रसिद्ध थी कारण कि यहीं से निकलनेवाले कुंवर महाराणा की राजगद्दी को सुशोभित करते थे। बंशीलाल इस हवेली के पुजारी-खानदान के थे। महाराणा सज्जनसिंह उनके बालसखा थे। यह दुर्भाग्य ही रहा कि महाराणा सज्जनसिंह ने कुल तेइस वर्ष की ही उम्र पाई। बंशीलाल भी सत्ताईस वर्ष से अधिक उम्र नहीं ले सके।

बंशीलाल बेजोड़ बांसुरी वादक थे। अपने जीवनकाल में उन्होंने सर्वाधिक बंशी की तान पीछोला के गणगौर घाट पर थबोले खाती लहरों को सुनाई। उस तान के प्रभाव से लहरें उनको स्पर्श करतीं। कभी-कभी लहरें उनकी तान से इतनी सम्मोहित हो जाती कि हिलोरे खाने लगती तब उस तरंग में बंशीलाल भी अपनी बांसुरी के हिलोरों के हलरावण में हिलोलते नजर आते।

बांसुरी की धुन में लोक-रागें ही अधिक रंजित होतीं। रात्रि के नीरव वातावरण में इन रागों को सुन सुन्दरियां खींची चली आतीं। ऐसे करते-करते बंशीलाल घेरे में आ गये। महाराणा तक उनकी शिकायत पहुंची। फलस्वरूप गणगौर घाट पर बंशी बजाने का प्रतिबन्ध लगा दिया गया। बंशीलाल कब चुप बैठने वाले थे। दूसरे ही दिन उन्होंने दूसरा घाट पकड़ा। यहां उनकी बांसुरी अधिक फलित हुई। इस कारण वह घाट ही बंशीघाट के नाम से चर्चित हो गया। इस सम्बन्ध में यह छप्पय सुनने को मिलता है-

एक बंशीवारे ने बजाई बंशी धुन कोई
पीछोला के घाट गणगोर मची हाट पर।

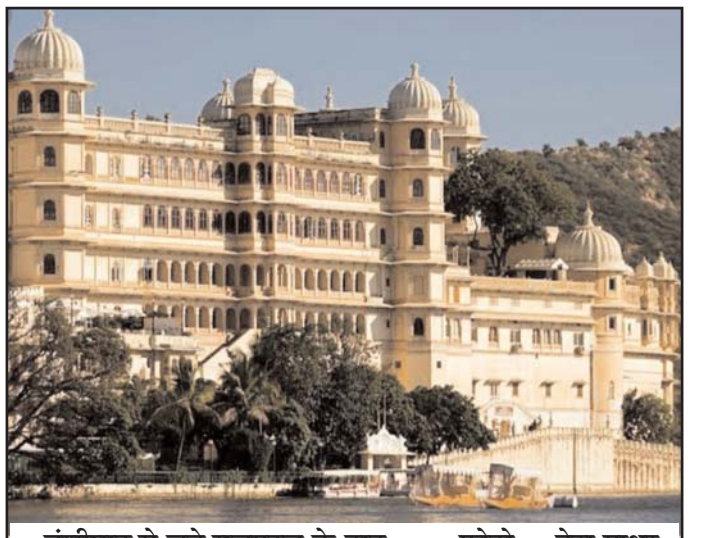

बंशीघाट से जुड़े राजमहल के ठाठ फोटो :- नेहा माथुर

दौड़ आई तान सुन गोरी गणगौरी नित
मुरली के मुरली मनोहर के ठाठ पर॥
लेखो राण सज्जन बंशी बावरो हुओ है कैसो
छैलो बन छबीलो उतर आयो पाट-पाट पर।
राण ने बुलायो बंद बंशी बजानो कियो
बंशी ने बजाई बंशी बंशीवारे घाट पर।।

श्यामसुन्दरजी व्यास ने 15 अप्रेल 1978 को बताया कि बंशीलाल रसिक मिजाज के थे किन्तु वे अच्छे वैद्य भी थे। उन्होंने कई असाध्य रोगों का इलाज भी किया। एकबार महाराणा ने गादोली के बोथलाल भारद्वाज को इलाज के लिए उनके पास भेजा। भारद्वाज वृक्ष पर चढ़कर आम उतार रहे थे कि अचानक बोरड़ी के झाड़ पर गिर पड़े। इससे उनके पूरे शरीर में बोरड़ी के नन्हे तीखे कांटे चुभ गये। बहुतेरा इलाज कराने के बाद भी वे बेचैन बने रहे।

बंशीलाल ने नीले थोथे का घोल बनाकर भारद्वाज के पूरे शरीर पर चुपड़ दिया और उसे अलग कमरे में छोड़ दिया। घोल का असर यह रहा कि पूरा शरीर सूज कर फूल गया। जब सोजिश उतरा तो कांटे स्वत: निकल आये। ये बंशीलाल श्यामसुन्दरजी के व्यास परदादा थे।

श्यामसुन्दरजी ने बताया कि बंशीलाल ने दो विवाह किये। उनके एक पासवान भी थी जो बाद में पुष्कर जाकर एक बड़े मन्दिर की पुजारिन बन गई। बंशीलाल के पिता रत्नेश्वरजी बड़े विद्वान थे। उन्होंने महाराणा शम्भुसिंह को न केवल पढ़ाया अपितु पाठशाला खोलने को भी प्रेरित किया फलस्वरूप महाराणा ने अपने और गुरुजी के संयुक्त नाम से जगदीश मन्दिर के पीछे शंभुरत्न नामक पाठशाला का शुभारम्भ किया जो मेवाड़ की पहली पाठशाला बनी। वहां आजकल बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय चल रहा है। **-म. भा.**

लोकनाट्यों की सफलता दर्शक-प्रदर्शक सब पर

-डॉ. पुष्कर चन्दरवाकर-

हमारी संस्कृति की प्राचीनावस्था में हमारे पास विशाल मन्दिर भी नहीं होते थे। मन्दिर रहे होंगे जिनमें सिर्फ गर्भगृह होता होगा और उसके सामने बड़ा खुला मैदान। माता के मन्दिर का जो खुला मैदान था वही 'चाचर चौक' बना है और वहीं ये लोकनाट्य प्रस्तुत होते थे और वेश की भजवणी होती थी।

हमारे देश में लोकनाट्यों के प्रस्तुतिकरण के लिए सिर्फ एक ही रंगमंच था और वह था खुला मैदान और उसकी वर्तुलाकार खुली जगह। मंच के चारों ओर प्रेक्षक बैठते हैं और दूर-दूर से पैदल चलकर उस लोकनाट्य को प्रस्तुत करने वाले आते हैं। रंगमंच के नाम पर उनके पास कुछ नहीं होता सिवाय धूल और मिट्टी के। सिर पर खुला आकाश। चहुंदिश उछलता मानव समुदाय। लाडू बनाते हैं व चूरमा तैयार करते हैं। उनके लिए खाने का थाल वहीं आ जाता है। अंग-चेष्टा से वह लाडू तैयार करने का अभिनय प्रस्तुत करते हैं। रेखा खींचकर थाल बनाते हैं। अभिनय से लाडू तैयार कर-करके थाल में डालते हैं। ऐसे लोकनाट्य के प्रस्तुतिकरण में प्रतीकों एवं इंगित का बहुत प्रयोग होता है।

लोकनाट्य में शाब्दिक अभिनय से ज्यादा इंगित अभिनय होता है। 'बाबाजी व चेलकी का वेश' में बाबाजी खुले आकाश के नीचे तल पर सारा ही मन्दिर खड़ा कर देते हैं और उनका सारा वेश ही शाब्दिक कम और प्रतीक-इंगितयुक्त अधिक होता है।

रंगमंच की तुलना में लोकनाट्य-कलाकार के पास कम-से-कम रंगमंचीय सामग्री होती है जबकि उसके प्रेक्षकगण संगीत, शब्द, नृत्य, अभिनय आदि सबका आस्वादन करना चाहते हैं। उसी से लोकनाट्य को अत्यधिक दर्शनीय बनाने हेतु वह इंगित, वाचिक और आंगिक अभिनय का सहारा लेता है। इससे लोकनाट्य का प्रस्तुतिकरण सीधा, सादा किन्तु सौन्दर्ययुक्त बन जाता है। रंगमंच के नाम पर उनके पास केवल सपाट भूमि ही होती है और कुछ नहीं।

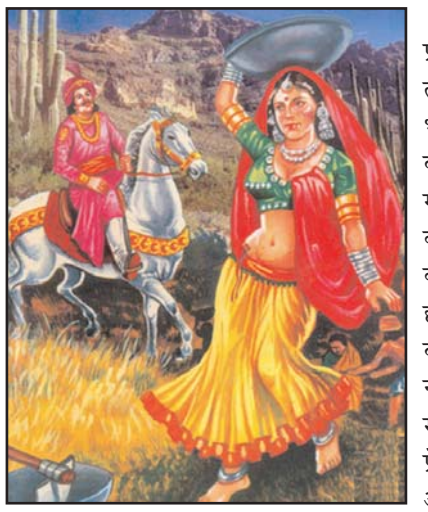

लोकनाट्यों को मंचस्थ करने वाले लोग बहुत कल्पनाशील होते हैं। गुजरात में 'जसमा-ओडणी' का वेश है। जसमा तालाब का उत्खनन कार्य करती है। वह कैसे इसे जतायेगी? हाथ से ऐसा इंगित करके, ऐसी चेष्टा से यह बताते हैं। गुजरात के राजवी सिद्धराज आते हैं। तालाब बिल्कुल शुष्क तालाब और बहुत से ओड तालाब के उत्खनन कार्य में रत हैं। ऐसी तस्वीर जेहन में बना कर वे लोग 'जसमा-ओडणी' का खेल दिखाते हैं। लगता है कि समस्त विश्व में प्राचीनकाल में लोकनाट्य की प्रस्तुतिकरण की यही रीति रही थी।

लोकनाट्य का प्रस्तुतिकरण होने को होता है तब प्रारम्भ में लम्बे-लम्बे भूंगल से बढ़िया घोष होता है, वह यह बताने के लिए कि गांव में लोकनाट्यकार नट दल का आगमन हुआ है और रात को वह खेल करेगा। रंगमंच होता है खुला चौगान। जहां बहुत लोग इकट्ठे होते हैं। नाट्य सारी ही रात चलता रहता है। लोकनाट्य में प्रेक्षकगण खुद लोकनाट्य के अंग बन जाते हैं। लोकनाट्य में प्रॉम्पटर की जरूरत नहीं होती।

'राम-रावण युद्ध' में रावण दशानन नहीं है लेकिन कराल जरूर है। उसका मुकुट घोड़े की दळी के कपड़े की गद्दी जैसा होता है। वह लम्बा गोल होता है और रावण के शीश पर रखकर उसमें पेड़ की छोटी-छोटी टहनियां रख दी जाती हैं। गांजा, अफीम और दारू पीकर वह मस्त और ताकतवर बन जाता है। दोनों हाथों में लोहे की नंगी तलवारें थमा दी जाती हैं और सारा गांव ही उसका रंगमंच बन जाता है।

राम गली-गली में घूमते हैं। रावण उनकी तलाश में गांव की गली-गली छानता है। जब दोनों का मिलन होता है तब युद्ध हो जाता है। गांव के कुछ लोग पेड़ों पर चढ़ जाते हैं। कुछ मकानों की छत पर और जब दोनों का युद्ध होता है तब सारी प्रेक्षक-मण्डली तीव्र और तीक्ष्ण आवाज देती है। घण्टे-दो-घण्टे तक राम-रावण युद्ध ही चलता रहता है। प्रेक्षकगण राम की सेना बनकर राम को प्रोत्साहित कर-कर उसमें रम जाते हैं। यह प्रस्तुतिकरण अद्वितीय है।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक नाटक का प्रस्तुतिकरण अलग-अलग होता है और उसमें सिर्फ नट का ही हिस्सा नहीं होता, और लोग भी इसमें सम्मिलित रहते हैं। दल के नायक का भी योग होता है। साजिन्दों का भी हिस्सा रहता है।

इस प्रमाण से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि लोकनाट्यों के प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया मात्र एक-दो की नहीं, सारे लोक-समुदाय की है। यह सम्मिलित प्रयास होता है जिसमें न केवल कलाकारों, दल के नायक तथा साजिन्दों का ही योग रहता बल्कि दर्शक समुदाय का भी हिस्सा रहता है जो अपनी टीका-टिप्पणियों से तथा गाने आदि में साथ देकर कलाकारों को प्रोत्साहित करता रहता है।

पोथीखाना

ऐतिहासिक विरासत ही है 'गांधी : जयपुर सत्याग्रह'

गांधी ने शोषित-गरीब-पीड़ित में भगवान देखा। झोंपड़ीनुमा आश्रमों से ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दी। जिन मामूली बर्तनों में कस्तुरबा भोजन बनातीं, वे आज भी आश्रम की अलमारियों में देखे जा सकते हैं। साबरमती या सेगांव..... सांप-बिच्छू सीधे चले आते थे। गांधी पहले से दवा का इन्तजाम रखते, सांपों के लिए पिंजरा बनवाया ; उन्हें मारा नहीं। मोटी खादी की धोती, लोहे की गोल ऐनक और लटकती हुई घड़ी पहने कच्ची-पक्की मूंछों वाले कृशकाय के पीछे सारा देश खड़ा था। गांधी का व्यक्तित्व व्यष्टि को समष्टि, एकान्त को अनन्त और भारत को ब्रह्मांड से जोड़ता है।

श्री गोपाल शर्मा हमारे बीच एक सुविज्ञ, हौंसलेबाज, खरे और दमखम वाले पत्रकार हैं जिन्होंने राजस्थान पत्रिका के प्रखर संवाददाता के रूप में अपनी पहचान देते दिवराला सती प्रकरण, राशन घोटालों का पर्दाफाश, भ्रष्टाचारों का भंडाफोड़ जैसी घटनाओं से खलबली मचाते पत्रिका को ऊंचा पायदान दिया। उसके बाद पिछले चार दशकों से वे स्वतंत्र रूप से जयपुर में ही महानगर टाईम्स का सम्पादन-प्रकाशन कर रहे हैं।

'गांधी : जयपुर सत्याग्रह' गोपाल शर्मा का अत्यन्त ही खोजपूर्ण तथा अनेक अद्‌भुत तथा अब तक अजानी जानकारियों से भरपूर ऐसा ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिसमें 24 फरवरी 1902 को जयपुर में गांधी के आगमन से लेकर 13 अक्टूबर 1940 के हरिजन में दीवान ज्ञाननाथ को हटाने की मांग करते लिखे लेख तक का प्रामाणिक दस्तावेजीकरण किया गया है। कुल चार भागों में इस ग्रन्थ का कलेवर समेटते लेखक ने प्रारम्भिक निवदेन में लिखा है-

अपने राजनैतिक जीवन में (गांधी) सिर्फ दो रियासतों में सबसे ज्यादा रूचि लेते नजर आते हैं। एक राजकोट, जहां उन्होंने खुद जाकर सत्याग्रह और अनशन किया ; दूसरा जयपुर, जहां सत्याग्रह और न्याय दिलाने के लिए उन्होंने सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया। (पृ. XVI)

इतिहास की पुस्तक लिखते समय किसी भी लेखक को बड़ी सावधानी और संजीदगी से काम लेना पड़ता है। जिस कालखण्ड का इतिहासकार वर्णन करने जा रहा होता है उस कालखण्ड के सामाजिक, राजनैतिक एवं शासकीय तन्त्र की पुख्ती जानकारी से उसे चौकन्ना रहते पद-पद पर प्रामाणिकता से गुजरना होता है। फिर गांधी जैसे राष्ट्र नायक पर लिखने के लिए तो गांधी जैसी ही शुद्ध शुचिता और पारदर्शिता अत्यन्त जरूरी होती है। ऐसे इतिहास बड़े श्रम तथा अध्ययनजनित गवेषणा के बिना लिखे भी नहीं जाते।

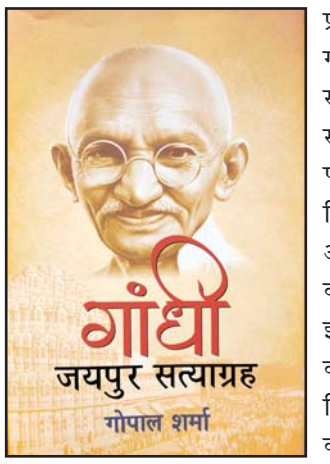

लेखक ने इसीलिए स्पष्ट किया है, किसी महत्त्वपूर्ण घटना और कालखण्ड को प्रामाणिक रूप से सामने लाने के लिए विद्वान लेखकों की कृतियों और समकालीन संस्मरणों की अहम भूमिका होती है। कोशिश यही की गई कि मूल साक्ष्यों की तह में जाया जाय, जिनके आधार पर इतिहास लिखे गये हैं। गांधी के बारे में कुछ भी लिखने से पहले उनके कथन और लेखन को ही प्रमाण माना गया है। सम्पूर्ण गांधी वांग्मय के सौ खण्डों के साथ ही गांधी के अनन्य सहयोगी महादेव देसाई और प्यारेलाल के दर्जनों पुस्तकीय विवरणों ने विभिन्न विषयों की आधार भूमि तैयार करने का काम किया है। (पृ. XIX) इसका प्रमाण पुस्तकों में दिये करीब सवा आठ सौ सन्दर्भ हैं जिन्हें पढ़कर तरतीबवार लेखन करने में लेखक ने न जाने कितना समय सिद्ध विनायक बनकर साधना सिद्धि में लगाया होगा।

निवदेन के अन्त में लेखक की यह टीप इस ग्रन्थ का सारपूर्ण सन्दर्भ मानता हूं जब वे लिखते हैं- 'गांधी का सार्ध शती समारोह वर्ष होने से ही यह पुस्तक आकार ले पाई ; ऐसा ही गांधी से जुड़ी श्रद्धा का विषय है। उन्होंने शोषित-गरीब-पीड़ित में भगवान देखा। झोंपड़ीनुमा आश्रमों से ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दी। जिन मामूली बर्तनों में कस्तुरबा भोजन बनातीं, वे आज भी आश्रम की अलमारियों में देखे जा सकते हैं। साबरमती या सेगांव..... सांप-बिच्छू सीधे चले आते थे। गांधी पहले से दवा का इन्तजाम रखते, सांपों के लिए पिंजरा बनवाया ; उन्हें मारा नहीं। मोटी खादी की धोती, लोहे की गोल ऐनक और लटकती हुई घड़ी पहने कच्ची-पक्की मूंछों वाले कृशकाय के पीछे सारा देश खड़ा था। गांधी का व्यक्तित्व व्यष्टि को समष्टि, एकान्त को अनन्त और भारत को ब्रह्मांड से जोड़ता है।'

कुल 380 पृष्ठों में सम्पोषित यह ग्रन्थ महानगर टाइम्स भवन, 2-सहकार मार्ग, जयपुर-15 से प्रकाशित 695 रूपये मूल्य का है जो इतिहास ग्रन्थ होते हुए भी किसी उम्दा उपन्यासिक कृति की तरह मन बनाकर पढ़ते रहने का शकुन देता है। मेरे लिये यह सुखद है कि मैं इसे लेखक द्वारा नये वर्ष की यादगार भेंट के रूप में स्वीकार करते उनकी इस कृपापूर्व मैत्री के प्रति अपने नमित भाव लिये हूं।

- म. भा.

अपना देश अपनी संस्कृति

ज्योतिषण गंगाबाई

मेवाड़ की पहली महिला ज्योतिषी के रूप में गंगाबाई आमेटा का नाम उस काल के जनजीवन में बड़ा प्रचलित रहा। यह महाराणा सज्जनसिंह का काल था। गंगाबाई के पिता का नाम ब्रजलाल भारद्वाज था। मां हीराबाई ने सात पुत्रों को जन्म दिया किन्तु सभी अकाल मृत्यु के शिकार हुए। उनके निधन के बाद गंगाबाई का विवाह भंवरलाल व्यास के साथ हुआ। यह बालविवाह था। इस समय गंगाबाई की उम्र मात्र सात वर्ष थी। भंवरलाल भी अधिक उम्र नहीं ले पाए। बारह वर्ष की उम्र में ही कुए में डूब जाने से उनका प्राणान्त होगया।

भंवरलाल के सुपौत्र श्यामसुंदर व्यास ने (15 जून 1981) को बताया कि तब विधवा का जीवन अंधकारमय था। सारे सुखों से वंचित बालविधवा का जीवन तो और कठिन तथा दुसाध्य था। गंगाबाई को उसके पिता ने ज्योतिष तथा कर्मकाण्ड की शिक्षा में पारंगत कर दिया। ससुरालवालों ने भी गंगाबाई को बड़ा संबल दिया। उसे पढ़ाई के लिए शंभुरत्न पाठशाला में भेज दिया। यह पाठशाला लार्ड ईडन द्वारा स्थापित की गई थी। गंगाबाई के श्वसुर रत्नेश्वर महाराणा शंभुसिंह के गुरु थे। पाठशाला शंभुसिंह के नाम पर प्रारंभ की जानी थी किंतु महाराणा ने इसे अपने गुरु के नाम पर खोलना चाहा। अंत में महाराणा और उनके गुरु ; दोनों के नाम से उसका नाम शंभुरत्न रखा गया। यह जगदीश चौक में स्थापित हुई जो अब भी बालिका विद्यालय के नाम से अस्तित्व में है। यहां हायर सैकण्डरी तक की पढ़ाई होती है।

गंगाबाई अपने पीहर हाथीपोल स्थित खेजड़ीवाली गवाड़ी में रहकर ज्योतिष का काम करने लगी। उनके पिताश्री की धरोहर के रूप में यजमानवृत्ति का काम गंगाबाई ने संभाल लिया। गंगाबाई वास्तुशास्त्र में भी दखल रखती थी। उन्होंने जाना कि जिस मकान पर मंदिर की ध्वजा की छाया पड़ती हो उसकी वंशवृद्धि नहीं होकर क्षरण ही होता है। उनके मकान के पास ही कुमावतों का मंदिर था। उन्हें पता चल गया कि उनके भाइयों के निधन के पीछे ध्वजा की छांह ही प्रबल थी। श्यामसुंदर व्यास से स्वयं गंगाबाई ने इस बात की चर्चा की।

उदयपुर के तीज के चौक, गांछीवाड़ा में स्थित सोलंकियों के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई जहां उनका नाम शिलोकीर्ण है। यों विधवा का हिन्दू विवाह की चंवरियों में जाना वर्जित रहता है किंतु गंगाबाई ने कई विवाह करवाये। कई समस्याग्रस्त परिवारों के लिए गंगाबाई का बड़ा सहारा रहा। किसी का नामा-जोड़ा नहीं मिलने पर गंगाबाई नाम बदलकर नई कुंडली बनाती। ऐसे डांगी, फूलमाली तथा सोलंकी समाज में उन्होंने कई परिवार बसाये जो अत्यंत सुखी जीवन व्यतीत करते पाये गये।

गंगाबाई के श्वसुर रत्नेश्वर महाराणा शंभुसिंह के गुरु थे। पाठशाला शंभुसिंह के नाम पर प्रारंभ की जानी थी किंतु महाराणा ने इसे अपने गुरु के नाम पर खोलना चाहा। अंत में महाराणा और उनके गुरु ; दोनों के नाम से उसका नाम शंभुरत्न रखा गया। यह जगदीश चौक में स्थापित हुई जो अब भी बालिका विद्यालय के नाम से अस्तित्व में है। एकबार महाराणा सज्जनसिंह ने गंगाबाई से पूछवाया कि शिकार पर जाने के लिए वे कौनसे दरवाजे से प्रस्थान करें। गंगाबाई ने अपने श्वसुर के माध्यम टीप लिख भेजी कि नया दंडपोल दरवाजा जो बंद है, उस रास्ते से पधारना शुभ रहेगा। महाराणा ने ऐसा ही किया और बाद में मनचाही शिकार करने पर गंगाबाई को याद किया।

गंगाबाई मुहूर्त देखने और भविष्य कथन करने में माहिर थी। एकबार मीठालाल दशोरा की दस तोले की तुस्सी गुम गई। गंगाबाई से पूछना कराई तो बताया कि कच्चे मकानों की लींपाई-पुताई कराने पर डेढ़ माह के भीतर तुस्सी मिल जायेगी। यही हुआ। लींपाई के दौरान चूहे के बिल में एक फूंदा दिखाई दिया। उसे बाहर निकाला गया तो उससे जुड़ी तुस्सी हाथ लगगई। इस पर गंगाबाई को दशोराजी ने एक तोला सोना भेंट करना चाहा पर गंगाबाई ने लेने से मना कर दिया।

श्यामसुंदर व्यास ने बताया कि सन् 1957 में 83 वर्ष की उम्र में गंगाबाई का निधन हुआ। गंगाबाई काले रंग का पोमचा तथा लाल-काली बगतरी पहनती थी। उनके हाथों में चांदी के बल्ये तथा वलय से बनी चूड़ी रहती। एकबार महाराणा सज्जनसिंह ने गंगाबाई से पूछवाया कि शिकार पर जाने के लिए वे कौनसे दरवाजे से प्रस्थान करें। गंगाबाई ने अपने श्वसुर के माध्यम टीप लिख भेजी कि नया दंडपोल दरवाजा जो बंद है, उस रास्ते से पधारना शुभ रहेगा। महाराणा ने ऐसा ही किया और बाद में मनचाही शिकार करने पर गंगाबाई को याद किया।

जोगनाथ की माया

यति लोग बड़े साधक तथा तंत्र विद्या के जानकार होते थे। उनके द्वारा मंदिर, वृक्ष, छतरियां, समाधिस्थान, भवन, हवेलियां उड़ाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थापित कर देना मामूली बात थी। इनकी इस प्रकार की क्रियाएँ चमत्कार पैदा करने, किसी को नीचा दिखाने, बदला लेने, अपना वर्चस्व कायम करने के साथ-साथ जन हितार्थ भी होती थीं। अकाल के दिनों में अनाज के ढेर के ढेर उड़ाकर आवश्यक स्थानों पर पहुँचाकर अगणित लोगों की रक्षा करने के उदाहरण भी कई मिलते हैं। राजस्थान में ऐसी कई टोनहिनें भी थीं जो स्वयं उड़ने के साथ-साथ अन्यों को उड़ाने की क्रिया में दक्ष थीं।

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' ने बताया कि चित्तौड़ जिले में उनके गांव छींपों का आकोला का जोगनाथ ऐसा ही कालाबाज था। इसने कई प्रेतों को साधा। रचके के बीज लाने वाला खेत्या नामक प्रेत भी इसी द्वारा साधित था। यह प्रेत जोगनाथ को शून्य में से गांजे की भरी सुलगती चिलम लाकर देता था।

जोगनाथ को एकबार बाठेड़ा रावजी के पास जाना पड़ा। रावजी ने जोगनाथ का शून्य में से चिलम लाने का करतब देखा तो वे स्वयं भी ऐसी क्रिया करने के आकांक्षी हो गये। जोगनाथ ने रावजी को खेत्या भूत इस शर्त पर दिया कि इसकी क्रियाएँ अन्य कोई नहीं जान पाये। जिस दिन अन्य कोई इसका भेद जान लेगा, उस दिन खेत्या पुन: उसके पास आ जायेगा।

डॉ. जुगनू ने बताया कि वह खेत्या ही था जो मेवाड़ में सर्वप्रथम रचके का बीज लाया। उदयपुर महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) ने जब अच्छे हष्टपुष्ट घोड़े देखे तो रावजी से उसका कारण पूछा। रावजी को मजबूर होकर भेद खोलना पड़ा। भेद खोलते ही खेत्या जोगनाथ के पास चला गया। वह आज भी जोगनाथ के साथ है। मालियों की भागल नामक गांव में जोगनाथ के साथ खेत्या की भी पूजा होती है। बाठेड़ा में रचके का कुड़ा उस घटना की साख का ज्वलंत साक्षी है।

- म. भा.

स्मृतियों के शिखर (135) : डॉ. महेन्द्र भानावत

ओम् आनंद और सरस्वती के उपासक ही थे डॉ. ओमानंद सरस्वती

अपनी पहचान बनाये रखने के लिए व्यक्ति जीवन पर्यन्त अपने एक ही नाम-ठाम, रूप-स्वरूप में रहता है। वे बहुत अधिक नहीं होते जो कभी-कभी अपना समग्र बदलाव किये रहते हैं। पिलानी में 15 मार्च 1932 को जन्मे डॉ. ओमानन्द सरस्वती ऐसे ही व्यक्ति थे। उन्होंने तो अपनी शिक्षा भी बदले परिवेश में जगह-जगह से ली।

वे ओमानन्द से ओम् आनन्द ही नहीं बने, अपने सारस्वत को भी छोड़ सरस्वती नाम धराया। पिलानी से मेट्रिक कर फिर पंजाब, प्रयाग, आगरा और जयपुर विश्वविद्यालय से क्रमशः ऑनर्स, साहित्यरत्न, स्नातक तथा स्नातकोत्तर की पढ़ाई कर राजस्थानी दोहा साहित्य पर पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की।

डॉ. ओमानन्द पढ़ने में ही कुशाग्र नहीं थे, अन्य क्षेत्रों में भी बढ़तर थे। उनसे किसी विषय पर बहस करने पर वे बंधीबंधाई डगर की बहस करने वालों में नहीं थे बल्कि एक नई परिपाटी के सूत्रधार के रूप में अपना चिन्तन प्रस्तुत करने वाले मनीषी थे। उनका व्यक्तित्व भी बड़ा प्रभावी था। ऊंची कदकाठी, पहलवानी शरीर-सौष्ठव, उन्नत भाल तथा सधे हुए सजग हालचाल लिए सदैव मुखर ही बने रहे।

मुझे उनका पहला पत्र जब वे शोधरत थे तब मिला। राजस्थानी दोहा साहित्य के सम्बन्ध में मैंने उन्हें लिखा कि इस साहित्य को लेकर लोकगायक-गायिकाओं के कल-कण्ठों पर बड़ी ही रोचक और सभी रसों से परिपूर्ण सामग्री की अकूत-अखूट सम्पदा है। पूरे राजस्थान के विविध ठिकानों से सम्बद्ध गायक-गायिकाएं दूहे दे-देकर फिर गीत प्रारम्भ करते हैं। रेगिस्तान के लंगा-मांगणियारों में तो ऐसे दूहों की विविध राग-गावणियों की टेरें ही सुनकर स्तंभित हो जाना पड़ता है। भारतीय लोककला मण्डल ने ऐसे अनेक दूहापरक लोकगीत और माण्डें रेकार्डिंग कर रखी हैं। नूर मोहम्मद लंगा और अल्लाजिलाईबाई उस समय के बड़े चर्चित नामों का भी मैंने हवाला दिया।

इधर मेवाड़ में लच्छुबाई, कजोड़ीबाई, रामप्यारीबाई, फत्तीबाई, नारायणीबाई, रतनप्रभा जैसी राजदरबारी लोकगायिका के रूप में तब बड़ा चर्चित नाम था जिसकी महाराणा भूपालसिंह ने बम्बई भेजकर ग्रामोफोन रेकार्डें तैयार करवाईं। लिखा यह भी कि हिन्दी साहित्य में नवरस प्रसिद्ध है पर इसे क्या कहा जाय कि हमारे लोक में तो प्रेमरस ही सर्वोपरि होकर उभरा है। जीवन और जगत में तो अन्य रस भी इसी प्रेमाभिव्यक्ति में उभार देते मिलते हैं। मेहँदी का तो पत्ता-पत्ता ही प्रेम-रस का सूचक है। यह दिखती हरी पर रचती लाल है। इसकी खासियत ही यह है कि यह ज्यों-ज्यों बंटती है त्यों-त्यों रचती है। गीत भी है- 'प्रेमरस मेहँदी राचणी।' बरसते मेह में मेहँदी पकती है। मेह की देन होने से ही इसका नाम 'मेहँदी' पड़ा। मैंने कुछ दोहे भी उन्हें लिख भेजे। दो दोहे ये थे-

(1) प्रीत करी सुख कारणैं, प्रीत कियां दुख होय।
नगर ढींढ़ोरो पीटद्यूं, प्रीत न करियो कोय।।

(2) साजन-साजन म्हैं करूं, साजन जीव जड़ीह।
चुड़ला ऊपर मांडद्यूं, बांचूं घड़ी-घड़ीह।।

जैसे विभिन्न विश्वविद्यालयों में उन्होंने अध्ययन किया वैसे ही विभिन्न विश्वविद्यालयों में उन्होंने अध्यापन कार्य किया। गुजरात के वल्लभ विद्यानगर के सरदार पटेल विश्वविद्यालय में तो उन्होंने तीन दशक तक अपनी सेवाएं दीं। एकबार मुझे भी उन्होंने वहां आमंत्रित किया। उसके बाद भी मैं वहां तीन बार गया। एकबार प्रो. भूपतिराम साकरिया के समय तब मैंने उनके निवास पर उनके पिताश्री बदरीप्रसादजी के भी दर्शन किये। उनके बाद मिश्रजी ने बुलाया तब सनतकुमारजी का रीडर पद पर चयन हुआ।

ओमानन्दजी ने पंजाब वि.वि., कुरूक्षेत्र वि.वि. तथा इन्दिरा गांधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी में यशस्वी आचार्य एवं विभागीय अध्यक्ष के रूप में सेवाएं दीं। यहां तो मैं बाद में भी लोकसाहित्य से जुड़े पाठ लिखने भी गया। इन सब जगह ओमानन्दजी ने अपने कार्य-व्यवहार की दबंग छाप छोड़ी। उनके छात्र ऐसे तैयार हुए जिन्होंने उच्च स्तरीय शोधकार्य किया तथा प्रतिष्ठा अर्जित कर उच्च पदों पर शोभित हुए। वे जितने फक्कड़, दबंग, स्पष्ट, सत्यवादी और लट्ठफट्ठ थे उतने ही उन्मुक्त गरिमामय व्यक्तित्व लिये ओजस्वी वक्ता, तेजस्वी विचारक और अट्टहासी दिलेर थे।

एक मौलिक चिन्तक तथा सृजनधर्मी रचनाकार के रूप में ओमानन्दजी ने साहित्य की नाटक, काव्य, कहानी, उपन्यास, आलेख, जीवनी, साक्षात्कार, समीक्षा आदि सभी विधाओं पर होशियारी से कलम चलाई। वे विद्वानों का भी बड़ा आदर और उससे भी अधिक आवभगत करने के लिए बेताब रहते थे। जब भी कोई अवसर आता, वे भरी सभा में उसका गुणानुवाद यशवर्धन कर खुश होते।

डॉ. ओमानन्दजी का अवदान साहित्य सृजन के साथ-साथ साहित्यकारों की प्रतिभा को उचित मंच तथा यथेष्ट पायदान देने का भी रहा। अनेक रचनाकारों को लेखन की ओर प्रवृत्त करने के साथ-साथ उन्होंने सात दर्जन से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन किया और अनेक प्रबुद्ध पाठकों, विद्वानों को निशुल्क वितरित

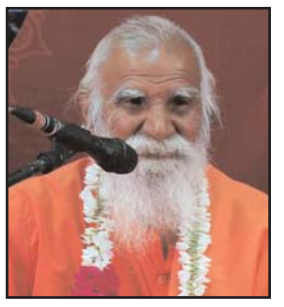

किया। इसके अलावा डेढ़ दर्जन के करीब पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन एवं प्रकाशन कर समुचित मंच दिया। यह सब 'घर फूंक तमाशा' जैसा कार्य था पर हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार तथा सृजनधर्मियों को सुव्यवस्थित एक जाजम देने और वैचारिक आदान-प्रदान को पुष्ट प्रासंगिकता देने के लिए वे आवश्यक मानते थे।

याद पड़ता है, उन्होंने पिलानी से कविता-पत्रिका का एक प्रकाशन किया था और ऐसे ही हरियाणा की आवाज नाम से साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ किया था। ये पत्र वे मुझे भी भेजते रहे। मैं भी उन्हें अपने सम्पादन में प्रकाशित लोककला, रंगायन नामक पत्र भेजता रहा। उसके बाद जब व्यक्तिगत स्तर पर पीछोला शुरू किया तो उसके अंक भी उन्हें प्राप्त होते रहे। साप्ताहिक सुलगते प्रश्न और फिर शब्द रंजन भी वे बड़े चाव से पढ़ते रहे तथा कभी-कभी फोन पर इनका जिक्र कर भी मेरी पीठथपाई करते रहे।

डॉ. ओमानन्दजी से जुड़े ये सारे सन्दर्भ यह व्यक्त करते हैं कि वे कभी एकमन, एक स्थिर भाव वाले नहीं रहे। एक फकीराना अन्दाज की तरह वे अपने जीवन को जीते चले और अन्त में संन्यासी बन गये। पहलीबार मैंने उदयपुर के साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ में रहकर उनके दर्शन किये तो मैं उन्हें पहचान ही नहीं पाया। जब मुझे कहा गया कि ये डॉ. ओमानन्दजी हैं तो मैं तपाक् से बोल पड़ा- 'आपको ऐसे बनने की क्या आवश्यकता थी?' स्वाभाविक ही था, उनका हमारा उस दौरान कोई संवाद नहीं हुआ। वे चले गये और बात आई-गई हो गई।

बाद में पता चला कि जीवन के उत्तरार्द्ध में उन्होंने चित्तौड़ को अपना स्थायी निवास बना लिया। उन्होंने वहां स्वामी विजयानन्द सरस्वती से संन्यास-दीक्षा ग्रहण कर आर्य समाजी बन गये हैं। वहां पद्मिनी आर्ष कन्या गुरुकुल का संचालन करते निर्धन, वंचित तथा जरूरतमंद कन्याओं को संस्कारी शिक्षा सुलभ कराते उनके लिए निःशुल्क छात्रावासीय गुरुकुल की बागडोर सम्भाले हैं। अब वे सारस्वत का चोला उतार स्वामी संन्यासी हो गये हैं।

इससे स्वामीजी का उदात्त ओज स्वरूप साहित्य ठण्डा अथवा शिथिल नहीं हुआ अपितु एक मैदानी नदी की तरह शान्त-सुखद रूप में चलायमान गतिशील ही रहा। वे वहां के मीरां स्मृति संस्थान से सक्रिय रूप से जुड़े और उसे नई ऊर्जा, नई हलचल और नवन्वेषी बनाते अखिल भारतीय पहचान दी। मीरांबाई के जीवन परिवेश, उसकी सृजन चेतना तथा भक्तिमार्ग के विविध आयामों को लेकर राष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठियां, उपनिषद एवं कार्यशालाएं आयोजित कर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया।

मीरां के पंचशती वर्ष पर उन्होंने भव्य समारोह का आयोजन करते 'मीरायन' नामक त्रैमासिक पत्रिका का शुभारम्भ किया। उनके संन्यासी स्वरूप को देखकर कइयों ने कहा कि इतनी सारी प्रवृत्तियां प्रारम्भ कर बड़े दक्ष-कौशलपूर्वक संचालित करने वाला व्यक्ति संन्यासी कैसे हो सकता है? स्वामीजी नाम रखने तथा चोला धारण करने पर भी अन्य संन्यासियों की तरह उनकी चर्या नहीं रही।

मीरा स्मृति संस्थान के पहले सचिव और अब अध्यक्ष पदासीन सत्यनारायण समदानी स्वामीजी से बड़े गहरे रूप में जुड़ते हुए उनके मार्गदर्शन में अनेक प्रवृत्तियों के संबल रहे। उन्होंने स्वामीजी से उनके संन्यासी होने का अर्थ-उद्देश्य बताते कहा, 'स्वामी ओमानन्दजी आचार्य हरिभद्रसूरिजी और मुनि जिनविजयजी की परम्परा के पुष्ट प्रकाण्ड पहरुए रहे। उनकी दृष्टि में उनका संन्यास का अर्थ जीवन से पलायन नहीं होकर मोह-माया के विकट जाल से किनारा करना नहीं है। परजीवी बने रह किसी के आगे हाथ फैला भिक्षा मांगकर अपना पेट भरना या कि मठाधीश के रूप में समृद्ध जीवन व्यतीत करना नहीं है अपितु अपना आत्मोत्थान करते व्यष्टि से समष्टि, भोग से योग तथा परमार्थ हित-चिन्तन की ओर प्रवृत्त होना है।' सच ही है, उन्होंने भारतीय संस्कृति और भारतीय परम्परा के सदाचार को अपनाते अन्तिम समय तक रचनात्मक प्रवृत्तियों की सृजनात्मकता बनाये रखी।

मीरां के जीवनदर्शन पर आयोजित एक संगोष्ठी में स्वामीजी ने मुझे याद किया। वे मेरे द्वारा मीरांबाई पर किये गये शोधकार्य और भ्रमण स्थलों की की गई यात्राओं से परिचित थे। इस सम्बन्धी 'निर्भय मीरां' नामक मेरी लिखित कृति उनकी निगाहों में आ चुकी थी।

अपने परचे में मैंने अब तक मीरां विषयक विद्वानों द्वारा किये गये कार्य के सर्वथा विपरीत कहा कि मीरां पर प्रामाणिक लिखने का दम भरने वाले विद्वानों ने अन्य स्थल तो दूर जन्मस्थान कुड़की-मेड़ता तथा विवाह स्थल चित्तौड़ तक को ठीक से नहीं देखा जबकि मैंने उन छह प्रान्तों का भ्रमण कर मीरां के उन सारे स्थलों, देवस्थानों, मन्दिरों, तीर्थ-जमीनों का जायका लेकर लोकनिधि मीरां के लोकाश्रय रूप का अध्ययन करते विभिन्न संतों, महात्माओं, महन्तों तथा भक्तों की धारणाओं को हृदयांकित करते अपना मंतव्य दिया है।

इस परचे में मेरी मुख्य स्थापना यही रही, 'मीरां के पति भोजराज भी पक्के शिवभक्त थे जिन्होंने जगह-जगह शिवलिंग स्थापित कराये। राजपाट छोड़ा और मीरां को अपनी भक्ति-उपासना के लिए पूरी छूट दी। पति भोजराज के निधनोपरान्त राजकाज की समस्त मर्यादाओं का निर्वाह करते मीरां ने अपनी दासियों के साथ 40 वर्ष की उम्र में चित्तौड़ त्यागा और 42 वर्ष भ्रमण करती हुई द्वारिका में समुद्र समर्पण किया।

यह भी कि मीरां जयपुर नरेश मानसिंह की बहिन जोधाबाई की कुक्षि से जन्मीं। वह मुगलसम्राट अकबर से नहीं ब्याई बल्कि जुगतकुंवर नाम बदल मेड़ता के राजा दूदा के पुत्र राजकुमार रतनसिंह से विवाहित हुई। भेद छिपाने के लिए कुड़की के ठाकुर-ठकुराइन को धर्म के माता-पिता बनाया गया। उसने रैदास को अपना गुरु बनाया जो जोधपुर के पीपाड़ का रहने वाला था। ये मीरां के 'वाट-गुरु' यानी 'राह-गुरु' थे जो दृश्य-अदृश्य में आवश्यकता के अनुरूप मीरां के सम्बल रहे। गुरु-दक्षिणा में मीरां को रैदास ने अपना इकतारा तथा मीरां ने रैदास को तुलसीमाला भेंट की जो अन्त तक दोनों के साथ रहे।

अपने गिरधर गोपाल के लिए बचपन से ही समर्पित रहने वाली मीरां हर समय भक्तिमती ही बनी रही। भक्ति में विदेह ही अधिक बनी रहती और सुधहीन हुए कृष्ण से बतियाती रहती। ऐसी स्थिति में वह न कभी साधु-संग खुली चौपाल पर गाती रही और न कभी नाची ही। पद तो उसने एक भी नहीं लिखा किन्तु उसके नाम-छाप के असंख्य पद लिखकर भक्तों तथा भजनिकों ने मीरां के प्रति अपनी श्रद्धा, आस्था तथा भगवत प्रेम को प्रकट किया। वह धारा पूरे देश में हर बोली, वाणी तथा भाषा में गंगा की पावन धारा के रूप में प्रवाहित है।

मीरां के पास गिरधर की कोई प्रतिमा नहीं थी। हां, शालिग्राम था जो बचपन में ही मेड़ता राजपरिवार में आये अयोध्या के संत गुणवंतदास से उसने हठ कर प्राप्त किया था। यह चल-शालिग्राम था जिसे मीरां ने अंत तक समुद्र समर्पण करते भी अपने साथ लुकाये रखा।'

स्वाभाविक था मेरे इस परचे से विद्वानों में सन्नाटा छा गया। मंच पर मैं प्रतीक्षा ही करता रहा कि उपस्थित विद्वानों में से कोई तो मेरे से कुछ सवाल-जवाब करेगा पर किसी ने कोई हलचल नहीं दी। वहां उपस्थित धुरंधर विद्वान मनीषियों में बहुतेरे तो मेरे परिचित थे। कुछ थे जो दूर-सुदूर के विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों से सम्बद्ध थे। कुछ तो सेवानिवृत्त थे पर सबका ही लेखन परिपक्व था और अनेक स्तरों पर पाठ्यक्रमों का हिस्सा बना हुआ था। इन सबसे मैं अलग शुद्ध लोकसाहित्य-लोकसंस्कृति के क्षेत्र का व्यक्ति था जिसके लेखन को उनकी निगाह में साहित्य का दर्जा ही प्राप्त नहीं था।

सोच और समझ का अपना-अपना दायरा ही नहीं, विद्वानों का भी अपना हमस्तर होता है जिससे स्वतः ही अपना-अपना घेरा और गुट बन जाता है। मेरा काम उनके मंतव्य से मान्यता प्राप्त कर वाहवाही प्राप्त करने या किसी मान-सम्मान का आकांक्षी कभी नहीं रहा। मेरा क्षेत्र केवल उस तरह का डिग्रीधारी पढ़ा-लिखा और लिखित शास्त्रवाचन का नहीं है किन्तु जो अलिखित परम्परानिष्ठ ज्ञान-सम्पदाजनित समझ इस लोक ने कण्ठ-दर-कण्ठ सहेजते हुए संरक्षित कर रखी है वह लाजवाब है।

- शेष पृष्ठ सात पर

शब्द रंजन

उदयपुर, शनिवार 15 जनवरी 2022

सम्पादकीय

रसों में एक वायरस

रसज्ञ मनीषियों ने साहित्य में नव-रसों को महत्त्वपूर्ण माना है जो अब तक चले आ रहे हैं। लोक को खंगालने पर उन नव-रसों के आगे सर्वाधिक चर्चित प्रेम-रस सब ओर उमड़-घुमड़ रहा है पर उसका जिक्र ही नहीं है। प्रेम-रस की तुलना मेंहदी से की गई है, 'प्रेम-रस मेंहदी राचणी' तथा 'जग लाली रहे जैसे रंग मेंहदी' जैसी पंक्तियां और कवियों तथा शायरों की रचनाओं में प्रेम के रंगों का माहात्म्य सैकड़ों रूपों में चर्चित हुआ है। रसखान, घनानन्द तो साहित्य में प्रेम के ही प्रतीक हो गये। प्रेमासक्त राधा और मीरां की कृष्णजनित भक्ति-रति भारतीयता की आदर्श आरती ही बनी हुई है।

रचनाकारों में प्रेम के रस-रंग आने वाले समय में भी फीके नहीं होंगे। चाहे कैसा ही युग आये, समाज प्रेम के सहचर के बिना अपनी रंगत-संगत नहीं दे पायेगा। प्रेम का पंथ कितना ही कराल और तलवार की धार लिये हो, प्रेमी-प्रेमिकाओं की दिल्लगी कभी बेरंगी नहीं होगी।

यह तो प्रेम-रस की बात हुई पर इन दिनों एक नया रस सामने आया है जिसने पूरी दुनियां में उधम मचा रखा है और वह है वाय-रस। यह रस सरस नहीं होकर नितांत नीरस और विरस है। इसे मारक रस कह सकते हैं। गत दो वर्षों से इसने पूरी दुनियां में हाहाकार मचा रखा है। इसके झपटे में आकर कई रामहारे हो गये।

आश्चर्य है कि इसे रस नाम ही क्यों और कैसे मिला? फिर यह ऐसा स्वांगी निकला कि अपनी नई निराली पहचान देते अलग-अलग जुमलाबाजी में मुखर हुआ प्रगट होता है। कभी जरा-सा मंदा पड़ता है तो कभी पुन: नये तेवर में जोश खाया लगता है। ऐसे में मुंह पर मास्क और दो गज की दूरी प्रत्येक की मजबूरी हो गई है। सरकार की गाइड लाईन के तहत टीके लगवाना जीवन को सुरक्षित करना सिद्ध हो गया है सो सनद रहे।

आखर की करामात

- नन्दकिशोर शर्मा -

एक भोजक ब्राह्मण अपने गाँव के खेत से लकड़ियाँ काटकर नगर में बेचने आया। नगर के द्वार पर राजा का दाणी कर लेने वाला व्यक्ति नियुक्त था। उसका नाम भी खेतसिंह था। जैसे ही द्वार पर पहुंचा, दाणी ने भोजक से कहा- दाण- कर दो। उसने कहा- अभी मेरे पास नहीं है। वापस आते समय चुका दूंगा। लकड़ियाँ बिकने पर मैं दे दूंगा लेकिन वह नहीं माना। उसने कहा कि मेरे पास केवल कपड़ों के अलावा कुछ भी नहीं है। विश्वास करो, मैं ब्राह्मण हूँ। तुम्हें आकर दे दूंगा लेकिन उसने उसकी बात नहीं मानी और कहा, कुछ भी नहीं हो तो अपना अंगोछा यहाँ रख जाओ।

उसने कहा, मैं ब्राह्मण हूँ। तुम मेरा विश्वास करो वरना मेरे आखर चल जायेंगे। मैं देवी भक्त हूँ। वह बोला, जा-जा तेरे जैसे कई चमत्कारी मैंने बहुत देखे हैं। तुम्हारे को जो करना हो कर लेना। उसने कहा, देख मान जा। वह नहीं माना तब उसने कहा-

खै खै रे खेतिया,
कड़कड़ करती बीज।
घर दोगड़ रो भागसी,
साँवणिये री तीज।।

वह अपना वस्त्र छोड़कर चला गया। उसकी यह काव्य-रचना तथा खेतसिंह के दुर्व्यवहार की चर्चा सारे नगर में होने लगी। उसकी पत्नी जिसका नाम दोगड़ था, चिन्ता करने लगी। उसने कहा, आपने ऐसा क्यों कहा। कभी-कभी आखर चल जाते है। उसने कहा, तुम चिन्ता मत करो। मैंने ऐसे कई पाखण्डी देखे हैं।

महीने बीतते चले गये। सावण महीना आ गया। दोगड़ ने कहा, आज तीज का दिन है। खेतसिंह अपनी मेड़ी में जाकर छुपकर बैठ गया। बारी, दरवाजे सब अच्छी तरह से ढक दिये। बरसात हो रही थी। तालाब भर गये थे। प्रात:काल होने वाला था। खेतसिंह बड़ा खुश था। उसने कहा, मैं अब खेते ब्राह्मण की खबर लूँगा। उसने दरवाजे खोल दिये। झरोखे पर बैठा हवा खाने लगा। दूर बिजली चमक रही थी। देखते ही देखते बिजली की चमचमाहट फैली और खेतसिंह के महल को गिरा गई। खेतसिंह मारा गया।

खेता और खेतसिंह एक ही वर्ण के शब्द हैं। दोनों का नाम एक ही था। इस कारण काव्योक्ति में खेतसिंह की पत्नी का नाम लेकर सम्बोन्धित किया गया। दोगड़ विधवा हो गई। इस काव्योक्ति (आखर करामात) का प्रयोग आज भी लोग अपने पर अन्याय करने वाले लोगों को डराने के लिए करते है।

खै, खेवण (बिजली की चमक), खेतिया (व्यक्ति का नाम), कड़कड़ (कड़-कड़ की आवाज), बीज बिजली घर दोगड़ का भागसी, दोगड़ के पति का मर जाना और उसका विधवा हो जाना। यह दिन श्रावण माह का तीसरा दिन तीज था।

तीन-पांच होती राजस्थान साहित्य अकादमी !

- डॉ. तुक्तक भानावत -

उदयपुर में 28 जनवरी 1958 को स्थापित राजस्थान साहित्य अकादमी पिछले तीन वर्षों से साहित्यिक गतिविधियों से बेखबर बनी हुई है। इस दौरान प्रतिवर्ष दिये जाने वाले लगभग सत्रह पुरस्कारों से कोई साहित्यकार सम्मान का स्वस्तिवाचक नहीं बन पाया है। अकादमी के सुसंचालन के लिए अध्यक्ष सहित और भी महत्त्वपूर्ण पद रिक्त हैं।

जो पद भरे हैं उनमें तीन चतुर्थ श्रेणी के तथा दो बाबुओं के हैं। इन्हीं तीन-पांच के सहारे बतौर कवि के 'चूं चरर-मरर, चूं चरर-मरर है चली जा रही भैंसा गाड़ी।' एक वह समय था जब साहित्य अकादमी वास्तव में साहित्य की, साहित्य के सरोकारों की, साहित्यकारों की अकादमी थी। तब राजनेता आकर भी साहित्य से सराबोर होने में गौरव की अनुभूति करते थे पर वह समय अब जाता रहा। धीरे-धीरे साहित्य पक्ष गौण होता गया। अब तो जो दल सत्तासीन होता है उसका व्यक्ति ही अध्यक्ष बनता है। अध्यक्ष पद भी शुद्ध राजनीतिक पद हो गया है।

एक घटना याद आ रही है। प्रख्यात कवि दिनकर और पं. जवाहरलाल नेहरू एकबार एक समारोह में भाग लेकर सीढ़ी उतर रहे थे। अचानक उतरते-उतरते पंडितजी सीढ़ी चूक डगमगाते नजर आये कि दिनकर ने उन्हें संभाल लिया और कहा, 'राजनीति जब गड़बड़ाने लगती है तब साहित्य उसका संबल बनता है।'

अब राजनीति की प्राथमिकता साहित्य, कला, संस्कृति नहीं रही। राजनीति ही सर्वोपरि हो गई है। इस संबंध में कुछ वरिष्ठ साहित्यधर्मियों के विचार यहां द्रष्टव्य हैं।

लोकतंत्र को अधिनायकतंत्रीय बनाने का उपक्रम :

राजस्थान साहित्य अकादमी अध्यक्ष के बिना खाली है इसलिए कोई कार्य नहीं हो पा रहा है। प्रबंध कार्य शून्यता लिए है। साहित्यकारों की मानसिकता भी सत्यता के लिए संघर्ष करने की नहीं लगती। राजनैतिक शक्तियां अपनी अधिनायिक मानसिकता का परिचय दे रही है। उनके लिए साहित्यकर्म कोई महत्त्वपूर्ण नहीं है। लोकतंत्र की चौथी शक्ति साहित्यकार है। वही लोकतंत्र को संरक्षण देने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है। साहित्य की कई सारी संस्थाएं होते हुए भी इस ओर उदासीनता ही नजर आती है।

- डॉ. राजेंद्रमोहन भटनागर

साहित्य अकादमी को संजीवनी बूटी की दरकार :

राजस्थान साहित्य अकादमी आज मौन ओर उदास है। हर ओर सन्नाटा है। स्टाफ भी धीरे-धीरे सेवानिवृत्त होता गया है। पुरस्कार और सम्मान जैसी महत्त्वपूर्ण गतिविधियां ठप्प हो गई हैं। यह बड़ी निराशा की बात है। पुस्तकालयाध्यक्ष के अभाव में पाठक भी निराश हैं। माननीय मुख्यमंत्री महोदय से आग्रह है कि इस दिशा में विशेष ध्यान देकर सभी पदों पर नियुक्तियां कर साहित्य अकादमी की गतिविधियों का सुचारू संचालन करें जिससे चेतना का संचार हो सके। **- डॉ. रजनी कुलश्रेष्ठ**

बिन अध्यक्ष सब सूना :

राजस्थान साहित्य अकादमी में पिछले तीन वर्षों से अध्यक्ष का पद खाली पड़ा है। पिछली सरकार में भी तीन वर्ष तक पद रिक्त रहा। सरकार कोई भी हो राज्य की अकादमियों को कोई वरीयता नहीं देते। लगभग अधिकांश काम ठप्प रहते हैं। साहित्य से तो जैसे किसी को कोई लेना देना ही नहीं।

अकादमी की पुरस्कार, सम्मान, चिकित्सा सहयोग, अमृत सम्मान, महोत्सव, साहित्यकार सम्मेलन, गोष्ठियां, इत्यादि समस्त गतिविधियों का इन्तज़ार साहित्यकार/ कलाकार तीन वर्षो से कर रहे हैं, पता नहीं कब सरकार की नींद खुलेगी। ये तो ठीक रहा कि राजस्थान साहित्य अकादमी के अधिकारियों ने उचित प्रक्रिया से राज्य के साहित्यकारों को प्रकाशन सहयोग योजना का लाभ दिया। बजट को लैप्स होने से बचाया।

- डॉ. ज्योतिपुंज

सरकार का उपेक्षापूर्ण रवैया :

राजस्थान साहित्य अकादमी की दुर्दशा देखकर बेहद अफसोस होता है। आज अकादमी में सिर्फ पाँच कर्मचारी हैं जिनमें से तीन तो सहायक कर्मचारी हैं। पिछले तीन वर्षों से साहित्यकारों के सम्मान के नाम पर जो राशि आती है वह लेप्स हो रही है। अध्यक्ष का नामोनिशान तक नहीं है।

साहित्य को दोयम दर्जे की चीज समझने की प्रवृत्ति बहुत घातक है। साहित्य संस्कृति का वाहक होता है। साहित्य में स्थानीयता की खुशबू प्रांत को पूरे देश में पहचान दिलाती है। न जाने क्यों सरकारें साहित्य के प्रति सदा उपेक्षापूर्ण रवैया अपनाती हैं। जबकि हमारे पड़ोसी राज्यों हरियाणा एवं उत्तरप्रदेश साहित्य संस्थानों की गतिविधियां गर्व के योग्य हैं।

मैं साहित्य और संस्कृति प्रेमी माननीय मुख्यमंत्री अशोक जी गहलोत से गुजारिश करूंगा कि शीघ्र ही अकादमी अध्यक्ष मनोनीत कर अकादमी को पुनर्जीवित करने की कृपा करें। शब्दरंजन ने साहित्यकारों की खामोशी के सागर में एक छोटा सा कंकड़ फेंका है। मैं शब्दरंजन का आभारी हूँ। **- माधव नागदा**

हासिये पर आती अकादमियां :

देश की आजादी के बाद कला, साहित्य एवं संस्कृति के विकास के लिए जिन उदात्त भावनाओं के साथ विभिन्न अकादमियों की स्थापना की गई थी, वे वर्तमान समय में हासिये पर आती जा रही हैं। इनमें अध्यक्ष पद पर राजनीतिक स्तर पर नियुक्ति होती है। नवीन चुनाव के बाद पूर्व में नियुक्त अध्यक्ष द्वारा त्यागपत्र प्रस्तुत कर दिये जाते हैं और लंबा समय बीत जाने पर भी पुनः नये अध्यक्षों की नियुक्ति नहीं हो पाती है।

लगता है कला, साहित्य एवं संस्कृति का विकास वर्तमान परिदृश्य में सामाजिक जीवन की मुख्यधारा का विषय नहीं रह गया है। प्रांत में कला, साहित्य एवं संस्कृति के विकास संबंधी सभी गतिविधियां शिथिल पड़ी हैं। प्रांत की लोकप्रिय एवं उत्तरदायी सरकार से अनुरोध है कि अकादमियों के रिक्त पड़े पदों पर शीघ्र नियुक्तियां कर कला, साहित्य एवं संस्कृति के विकास को गति प्रदान कर सकें तो यह कार्य सर्वजनहिताय सिद्ध होगा।

- शिव 'मृदुल' एवं डॉ. रमेश 'मयंक'

सरकारी उदासीनता में साहित्य संस्कृति :

राजस्थान साहित्य अकादमी सहित राज्य की अन्य भाषा अकादमियों में पूर्णकालिक अध्यक्ष हो तथा संचालन निकायों की अनुपस्थिति के कारण राज्य के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में देखे जा रहे ठहराव को किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। समय की मांग है कि राजस्थान सरकार तमाम अकादमियों में नियमित नियुक्तियां करके साहित्यिक-सांस्कृतिक वातावरण के निर्माण में अपनी गंभीरता तथा दायित्व को चरितार्थ करने की पहल करे। राजनीतिक क्षेत्र में साहित्य एवं संस्कृति की भूमिका को कमतर करके देखना किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं है।

- डॉ. कुन्दन माली

व्हीलचेयर पर बैठी अकादमी :

साहित्य और साहित्यकारों की हितैषी बताने वाली सरकार ने अध्यक्ष और सचिव के साथ ही अन्य पद भी कई खाली हैं ऐसे में साहित्य और समाज दोनों ही नदारद हैं। यहां यह भी स्मरण दिला दूं, सन् 2019 में सरकार ने अपने बजट में स्वतंत्र रूप से जवाहरलाल नेहरू बालसाहित्य अकादमी की घोषणा की थी जिसकी पूरे देश में वाहवाही हुई थी पर वह घोषणा ही पता नहीं कहां दफन है। साहित्यिक रूचि सम्पन्न अध्यक्ष और निदेशक के बिना सरकार ने जैसे अकादमी को ही व्हीलचेयर पर बिठादी है।

- राजकुमार जैन 'राजन'

ठप्प पड़ी गतिविधियां चिंतनीय :

राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर की वर्तमान स्थिति को देखकर दु:ख होता है। साहित्यिक गतिविधियां ठप्प है। प्रदेश में साहित्यिक आयोजन नहीं हो रहे हैं। संगोष्ठियों, शिविरों, सेमिनारो, पुरस्कार समारोहों के कार्यक्रम नहीं हो रहे हैं। साहित्यकारों को उपयुक्त मंच नहीं मिल रहा है। राज्य सरकार की उपेक्षा से यह जीवन्त संस्थान मृतप्राय हो गया है और आखिरी सांसें ले रहा है। अकादमी द्वारा साठ साल में साहित्य व साहित्यकारों के लिए जो भी कार्य किया वह निष्प्रयोजन हो रहा है। सरकार व साहित्यिक जगत के लिए यह चिन्तनीय व विचारणीय है। **- डॉ. लक्ष्मीनारायण नंदवाना**

ठंडे बस्ते में ठिठुरती अकादमी :

शुरू-शुरू में तो अकादमी का कामकाज ठीक ही था जब डॉ. मोतीलाल मेनारिया डाइरेक्टर थे। वे विधान को सर्वोपरि मानते थे। बाद में तो डाइरेक्टर का पद ही समाप्त हो गया। तब अध्यक्ष स्वयंभू हो गया। इससे खेमाबाजी बढ़ी। कुछ तो ऐसे आये जिनका साहित्य से सरोकार ही दूर की कौड़ी था। एक से अधिक बार के अध्यक्षों का कार्यकाल भी धीरे-धीरे छविमान नहीं रहा। समय-समय पर सरकार ने भी अकादमी की कार्यप्रणाली का कोई मूल्यांकन नहीं करवाया। अब तो साहित्य हासिये पर और राजनीति प्राथमिकता के पायदान पर है जिससे अकादमी ठंडे बस्ते में ठिठुर रही है।

- डॉ. महेन्द्र भानावत

उदयपुर में सांस्कृतिक स्रोतों से साक्षात्कार

- दिनेश रावत -

वक्त के संग कदमताल करती जिंदगी कब, कैसे, कहाँ लेकर जाए और कब, कहाँ, किससे मुलाकात करवादे! शायद ही कोई जानता हो। दौड़ती-भागती जिंदगी में किसी से पल-दो-पल की मुलाकात हो और मुलाकात ताउम्र के लिए मन-मस्तिष्क में घर कर जाए, अक्सर कम ही होता है। मेरी खुशकिस्मती है कि वक्त ने मुझे ऐसे अवसर या सुयोग बख्से हैं।

बात दिसम्बर 2016 की है। विभागीय प्रशिक्षण में नामित होने के चलते मुझे रजवाड़ों की माटी से महकते महलों से घिरे, सांस्कृतिक वैविध्य एवं वैशिष्ट्य को खुद में समेटे, झीलों के शहर उदयपुर के सीसीईआरटी केन्द्र जाना हुआ। इस दौरान कार्यशाला में उपस्थित देशभर के शिक्षकों से ही नहीं बल्कि विभिन्न सत्रों में विषय विशेषज्ञों के रूप में उपस्थित हुए संदर्भ व्यक्तियों को सुनने-समझने का भी यह पहला अवसर था। सबकी अपनी-अपनी विशेषज्ञता थीं। विशेषताएं थीं। उपलब्धियां थीं लेकिन मुझे जिस व्यक्तित्व ने सर्वाधिक प्रभावित किया वे डॉ. महेन्द्र भानावत जी थे।

डॉ. महेन्द्र भानावतजी! यानि एक ऐसा नाम जिन्होंने राजस्थानी लोककला, लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति के विविध आयामों को एक नई पहचान या व्यापक फलक दिलवाने के लिए नगर-शहर की चकाचौंध व सुख-सुविधाओं को छोड़ गांव के संकरे गलियारों, उबड़-खाबड़ व पत्थरीली पगडंडियों को चुनना हितकर समझा। गांव-गांव, कोने-कोने भ्रमण करते हुए वे लोक से जुड़े तमाम नाम-गुमनाम पहलुओं का गहनता से अध्ययन-अवलोकन-संकलन ही नहीं करते रहे बल्कि सुलझे-अनसुलझे पहलुओं की भी परत-दर-परत पड़ताल करते हुए उन्हें तर्क, तुलना, विवेचना, विश्लेषण, संश्लेषण की कसौटी पर कसते अपनी समृद्ध बौद्धिक क्षमता व गहरी समझ की बदोलत लिपिबद्ध कर एक नये कलेवर व फ्लेवर के साथ दुनिया-जहान तक पहुँचाते रहे हैं।

लोक थाती-माटी, संस्कार-सरोकार, आस्था-विश्वास, आनंद-अनुरंजन, प्रथा-परम्पराएं, रीति-नीति, गायन-वादन व नृत्याभिनय आदि तमाम पक्षों पर उनके द्वारा लिखी गयीं शताधिक पुस्तकें और हजारों आलेख लोक के प्रति उनके आस्था-अनुराग तथा लगाव-छुकाव को प्रमुखता से परिलक्षित करते हैं। लोक साधना-उपासना के इसी पुण्य प्रताप के फलस्वरूप डॉ. भानावतजी लोकसाहित्यकोश के एक ऐसे दैदीप्यमान नक्षत्र बनकर उभरे हैं जिसकी स्वर्णिम आभा से वे स्वयं ही आभामान नहीं हैं बल्कि गांव-देहात के कच्चे-पक्के, आड़े-तिरछे रास्तों के सहारे इस महापथ की यात्रा पर बढ़ने की हिम्मत-साहस जुटाने वाले पथिकों के लिए भी प्रेरणापुँज बनकर उनके पथ को भी आलोकित किए हुए हैं।

उदयपुर जाना तो विभागीय प्रशिक्षण के वास्ते हुआ पर विभागीय प्रशिक्षण के अतिरिक्त उदयपुर की यह यात्रा वैयक्तिक रूप से भी मेरे लिए इसी रूप में बेहद सुखद, सफल व सार्थक रही कि उसी दौरान मुझे उन जैसे लोकमनीषी से मिलने का अवसर मिला जो मेरे लिए किसी सौभाग्य से कम नहीं है।

भारत सरकार का संस्कृति मंत्रालय भारत की क्षेत्रीय सांस्कृतिक विविधता व विशिष्टताओं को समेटते, सहेजते हुए अक्षुण्ण बनाये रखने की दिशा में प्रयासरत है। शिक्षक-प्रशिक्षण भी मंत्रालय के विभिन्न कार्यक्रमों में से एक है। इसके तहत शिक्षा व संस्कृति की समझ रखने वाले शिक्षकों द्वारा गोहाटी, हैदराबाद, उदयपुर तथा नईदिल्ली में स्थापित सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्रों में प्रशिक्षण प्रदान किए जाते हैं। प्रशिक्षण के दौरान उपस्थित शिक्षक बहुभाषी एवं बहु-सांस्कृतिक विशिष्टता के धनी भारत भू-भाग की विविधता से परिचित होते हुए 'अनेकता में एकता' के भाव का सहज अहसास करते हैं। अर्जित ज्ञान, कौशल व दक्षताएं शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया को रोचक, प्रभावी एवं बालोपयोगी बनाने में मददगार साबित होती हैं।

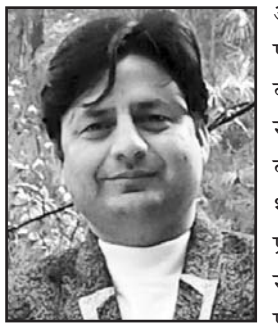

'शिक्षा में पुतलीकला की भूमिका' विषय पर आयोजित कार्यशाला के दौरान देशभर के 18 राज्यों से पहुँचे प्रतिभावान शिक्षकों की व्यक्तिगत प्रतिभाओं के साथ सम्बंधित प्रांत विशेष की सामाजिक-सांस्कृतिक विशिष्टता को भी करीब से जानने-समझने का यह अच्छा अवसर था। कार्यशाला का एक दिन किसी राज्य विशेष के नाम का होता था।

कार्यशाला के आरंभ में सम्बंधित को अपने राज्य की विशिष्टताओं को प्रदर्शित करने के लिए एक घंटे का समय दिया जाता था। प्रतिभागी शिक्षकों का प्रयास रहता था कि इस दौरान वे अपने राज्य को सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुत करें, फिर चाहे वह गीत-संगीत-नृत्य हो या अन्य विशेषताएं। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक के अलग-अलग राज्यों से पहुँचे शिक्षकों के साथ अनौपचारिक रूप से होने वाली बातचीत भी कुछ-न-कुछ नयी किंतु सार्थकता लिए होती थी।

कार्यशाला पुतली कला के उद्भव, विकासक्रम, निर्माणप्रक्रिया, अनुप्रयोग, संचालन से शुरू होकर वॉयस माड्यूलेशन, थियेटर कौशल, मूकाभिनय, बालोपयोगी गतिविधियाँ/खेल, शिक्षाशास्त्र, बालमनोविज्ञान, शिक्षा का दर्शनशास्त्र, स्क्रीप्ट राईटिंग, कक्षा शिक्षण के दौरान पुतलियों का अनुप्रयोग से होते हुए भारत के सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास, लोकसाहित्य व रंगमंच आदि महत्त्वपूर्ण विषयों तक जा पहुँची थी।

हर सत्र कुछ-न-कुछ नया व रोचकता लिए होता था। संदर्भ व्यक्ति भी अपने-अपने क्षेत्रों में महारथ हासिल थे। इसलिए मूकाभिनय पर डॉ. दीपक दीक्षितजी का सत्र हो या पुतली पर डॉ. एन. के. सनाटियाजी, थियेटर इन एजुकेशन एंड इम्पोरटेंस ऑफरोल प्ले इन क्लासरूप टीचिंग पर डॉ. लाक्व हुसैनजी, अंगुली पुतली की तैयारी पर श्री कौशिक सिंहा रायजी, पुतली अभिनय पर श्री विलास जानवेजी, इंटीग्रेटिंग क्राफ्ट इन स्कूल पर डॉ. शर्माजी, इंटीग्रेट एप्रोच इन एजुकेशन पर श्री के. सी. मालाजी के सत्र खासे रोचक एवं प्रभावी रहे।

डॉ. भानावतजी 26 दिसम्बर, 2016 को 'लोकसाहित्य एवं रंगमंच' विषय पर व्याख्यान हेतु पधारे। सत्र संयोजिका श्रीमती ज्योति सक्सेनाजी ने डॉ. भानावतजी के कृतित्व एवं व्यक्तित्व से अवगत करवाया तो भानावतजी के वृहद व व्यापक परिचय को सुन मन-मयूर आनंदित-उत्साहित हो उठा।

डॉ. भानावतजी ने व्याख्यान शुरू किया। अध्ययन-अवलोकन, निरीक्षण-परीक्षण जितना गहरा, प्रस्तुतीकरण का अंदाज उतना ही सहज-सरल-सरस और हृदयस्पर्शी था। लोकयात्रा व रंगमंच का यह सफर एक घंटे का था। यात्रा के लिए मैं कब और किस प्रकार भानावतजी के लोकविमान में सवार हुआ और घंटे भर का सफर पूरा करवाकर कब लाकर उन्होंने उसी प्रशिक्षण हॉल में छोड़ते हुए धन्यवाद कह दिया, पता भी नहीं चला।

सत्र समाप्त हुआ। डॉ. भानावतजी ने सभागार छोड़ अतिथि कक्ष में प्रवेश किया। मेरा मन अब भी उनके लोक साहित्य लहरी में गोते लगा रहा था। करीब जाकर मिलने की तीव्र उत्कंठा हो रही थी पर भारी-भरकम परिचय सुनते ही उनके बहुत बड़े व्यक्ति होने का भान होने लगा। संकोच के बादल उमड़ने लगे थे कि उनसे कैसे मिलूं। मैं तो कुछ भी नहीं हूँ। इसी बीच जलपान के लिए हमें भी समय मिला। मिलने की यही चाह मुझे जलपान कक्ष के रास्ते से हटाकर उनकी ओर मोड़ ले गयी। बहुत हिम्मत करके दरवाजे पर दस्तक देकर प्रवेश की अनुमति चाही।

कर्म की तप्त भट्टी पर तपे और उपलब्धियों के माणिक-मोतियों से लदे-पटे लोकमनीषी ने जिस सरलता-सहृयता से मुझे अंदर बुलाया, पास बिठाया, उससे मन में बसा अनावश्यक भय छूमंतर-सा हो गया। बातचीत हुई तो हिम्मत जगी। मैंने उठकर शयन कक्ष की तरफ दौड़ लगायी। झोले में रखी अपनी पुस्तक 'रवाँई क्षेत्र के लोकदेवता एवं लोकोत्सव' उठायी और आशीर्वाद की अपेक्षा के साथ उन्हें भेंट करनी चाही। पुस्तक देख वे खासे आनंदित हुए।

उन्होंने सहृदयता के साथ पुस्तक स्वीकारी। मेरी पीठ थपथपाई और आश्वस्त किया कि- 'मैं इसे जरूर पढ़ूंगा और पढ़कर इस पर लिखूंगा भी।' सच कहूँ तो उस वक्त यकीन नहीं हुआ। क्योंकि अधिकांशत: लोग ऐसा ही कहते हैं। इतने महान व्यक्ति के पास भला मेरी कृति पढ़ने का समय कहां होगा? खैर जो भी हो; मैं उन तक पुस्तक पहुंचाकर काफी प्रसन्न था। कुछ ही क्षणों बाद डॉ. साहब अपने गन्तव्य को निकल पड़े और हम फिर से सभागार में।

29 दिसम्बर, 2016 को कार्यशाला का समापन हुआ। पखवाड़े भर समय उदयपुर में व्यतीत करने के बाद सभी अपने-अपने घरों को लौटने लगे। झीलों के शहर से लौटते हुए मन में यादों और बातों का एक बड़ा पुलिंदा साथ बांध लाए। उसमें लोककला मण्डल, शिल्पग्राम भ्रमण, हल्दीघाटी की हल्दी सी माटी, चेतक का स्मारक, राणा कुम्भा द्वारा स्थापित कुम्भलगढ़ का किला और झीलों के बीच में बसे उदयपुर का अद्वितीय सौन्दर्य आदि बहुत कुछ समाहित था।

कार्यस्थली पर पहुँचता उससे पहले शीतावकाश हो गया था। इसलिए बच्चों के पास हरिद्वार ही रूक गया। शीतावकाश पश्चात् 15 जनवरी को विद्यालय खुला। उदयपुर से लपेटी-समेटी यादें विद्यालय तक पहुँच गयी। साथ में सी.सी.इ.आर.टी. द्वारा दिया गया पपेट किट भी। विद्यालय के बच्चे उसे देखने को बहुत उत्सुक थे। सबसे पहले वही किट खोलकर बच्चों की जिज्ञासा शांत की।

किट में कुछ पुतलियाँ भी थीं, जो मैंने प्रशिक्षण के दौरान बनायी थीं। उन्हें देख बच्चे एकदम से चहक पड़े। कविता थोड़ी बड़ी थी और बर्हिमुखी भी इसलिए एकदम से बोल पड़ी सर! ये क्या करती हैं? मैंने जवाब दिया ये नाचती-गाती हैं। बातें भी करती हैं। बच्चों को विश्वास नहीं हुआ तो विश्वास दिलवाने के लिए जल्दी ही पुतलीकला पर कार्यशाला आयोजित करवाने का वादा किया।

कार्यशाला हुई प्राथमिक विद्यालय मेतली के अतिरिक्त रा.उ. माध्यमिक विद्यालय के बच्चों ने भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। पुतली बनाने और चलाने का अभ्यास करवाया गया। अब विद्यालय की कक्षा ही नहीं बल्कि समुदाय विशेष में बालिका शिक्षा, मतदाता जागरूकता, स्वच्छता अभियान आदि विषय पर जन-जागरूकता भी पुतलियों के सहारे ही होने लगी।

इसी बची एक दिन अचानक मोबाइल की घंटी बची। मैं कौन पूछता? उससे पहले ही मेरे कानों से आवाज टकरायी 'मैं उदयपुर से भानावत बोल रहा हूँ!' सच कहूं तो यकीन नहीं हुआ। बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा- 'मैंने आपकी पूरी पुस्तक पढ़ ली और उस पर लिखा भी है जो शब्द रंजन में छपा है।

आप अपना पता बताइए ताकि मैं आपको समाचारपत्र भेज सकूं।' उस दौरान मैं मेतली में सेवारत था इसलिए वहीं का पता नोट करवाया। कुछ ही दिनों बाद डाकिया उक्त पत्र मुझे पकड़ा गया। पत्र के पोथीगाथा स्तम्भ में पुस्तक समीक्षा देख-पढ़ मन में प्रसन्नता व डॉ. भानावत जी की महानता के प्रति जो भाव प्रस्फुटित हुए मेरे लिए शब्दों में समेट पाने संभव नहीं हैं। अहसास यह भी हुआ, 'कोई व्यक्ति सामान्य से हटकर विशिष्ट की पंक्ति में यूँ ही खड़ा नहीं होता।'

तब से आज तक 'शब्द रंजन' का एक नियमित पाठक बना हूँ। मेरे लिए शब्द रंजन एक पत्र मात्र नहीं बल्कि लोक मनीषी डॉ. भानावतजी की लेखनी का पुण्य प्रसाद है, जिसे पाकर मैं आनंदित एवं कृतज्ञ हूँ। इसमें भी कोई दो राय नहीं कि शब्द रंजन को पढ़ते हुए मैंने लोक, लोक विरासत एवं लुप्त-विलुप्त प्राय: होती विधा-परम्पराओं की नब्ज पकड़ने-पढ़ने-लिखने का सऊर-सलीखा सीखा है। शब्द रंजन में छपना भी अलग सुखानुभूति व आत्मविश्वास जगाता है। टेलीफोनिक बातचीत में भी डॉ. भानावतजी का आशीर्वाद प्राप्त होता रहता है।

खुशकिस्मती यह भी कि पहली पुस्तक के बाद मैं अपनी दूसरी पुस्तक 'रवाँई के देवालय एवं देवगाथाएँ' भी भानावतजी के कर-कमलों तक पहुँचा सका। उसी महानता व सहृयता के साथ डॉ. भानावतजी ने उसे न केवल पढ़ा बल्कि समीक्षा लिख व छापकर भी आशीर्वाद प्रदान किया। यह मेरे लिए किसी सौभाग्य से कम नहीं है। कामना है लोकपुरूष डॉ. भानावतजी स्वस्थ, निरोग एवं दीघार्यु हों तथा अपनी स्नेहिल छाव से वे हम भी आप्लावित करते रहें।

डॉ. महेन्द्र भानावतजी जिन्होंने गांव के संकरे गलियारों, उबड़-खाबड़ व पत्थरीली पगडंडियों को चुनना हितकर समझा। गांव-गांव, कोने-कोने भ्रमण करते हुए वे लोक से जुड़े तमाम नाम-गुमनाम पहलुओं का गहनता से अध्ययन-अवलोकन-संकलन ही नहीं करते रहे बल्कि सुलझे-अनसुलझे पहलुओं की भी परत-दर-परत पड़ताल करते हुए उन्हें तर्क, तुलना, विवेचना, विश्लेषण, संश्लेषण की कसौटी पर कसते अपनी समृद्ध बौद्धिक क्षमता व गहरी समझ की बदोलत लिपिबद्ध कर एक नये कलेवर व फ्लेवर के साथ दुनिया-जहान तक पहुँचाते रहे हैं। प्रशिक्षण के दौरान उपस्थित शिक्षक बहुभाषी एवं बहु-सांस्कृतिक विशिष्टता के धनी भारत भू-भाग की विविधता से परिचित होते हुए 'अनेकता में एकता' के भाव का सहज अहसास करते हैं। अर्जित ज्ञान, कौशल व दक्षताएं शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया को रोचक, प्रभावी एवं बालोपयोगी बनाने में मददगार साबित होती हैं।

बाजार / समाचार

पिम्स में नसों पर दबाव बना रही पसली को निकालने का सफल उपचार

उदयपुर (वि.)। पेसिफिक इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज (पिम्स) हॉस्पिटल, उमरड़ा में चिकित्सकों ने नसों पर दबाव बना रही पसली को निकालने की सफल जटिल सर्जरी कर मरीज को राहत प्रदान की है।

चेयरमेन आशीष अग्रवाल ने बताया कि सत्रह वर्षीय देविका के गर्दन में जन्म से से ही एक अतिरिक्त पसली थी। यह पसली गर्दन से हाथ में जाने वाली खून की मुख्य धमनी व ब्रेकियल प्लेक्सस नसों को दबा रही थी। इससे मरीज के बायें हाथ मे असहनीय दर्द रहता था। गत दिनों परिजनों ने मरीज को पिम्स हॉस्पीटल उमरड़ा में दिखाया। यहां हुई जांचों के बाद हैंड एवं माइक्रो वेस्कुलर सर्जन डॉ. योगेशकुमार शर्मा ने सर्वाईकल पसली में एक्सीजन कर नसों से दबाव को पूरी तरह हटा दिया। तीन घंटे चले इस ऑपरेशन में डॉ. भानुप्रताप व एनेस्थेसिया विभाग के डॉ. नरेश त्यागी का सहयोग रहा।

युवक को मिला नया जीवन

उदयपुर (वि.)। गीतांजली मेडिकल कॉलेज हॉस्पिटल में गैस्ट्रोएंटरोलॉजी विभाग से डॉ. पंकज गुप्ता, डॉ. धवल व्यास, डॉ. मनीष दोडमानी, जी.आई. सर्जन डॉ. कमलकिशोर विश्नोई, टी.बी. चेस्ट रोग विशेषज्ञ डॉ. गौरव छाबड़ा, तकनीशियन संजय सोमारा व टीम ने भोजन नली फटने के 10 दिन पश्चात हॉस्पिटल पहुंचे 35 वर्षीय युवक को नया जीवन दिया है।

डॉ. पंकज ने बताया कि रोगी को जब हॉस्पिटल में लाया गया तब उसकी हालत बहुत गंभीर थी। रोगी का तुरंत सी.टी किया गया जिसमें पता चला कि उसकी भोजन नली फट चुकी थी। इस कारण वह जो भी खा पी रहा था, वह सीधा फेफड़ों में, ह्रदय के आसपास जा रहा था। ऐसी स्थिति में ऑपरेशन भी संभव नही था। ऐसी स्थिति में रोगी की भोजन नली जहाँ से फट गयी थी उसके ऊपर व उसके नीचे 10 सेंटीमीटर का स्टेंट डाला गया। स्टेंट को धागा बांध नाक से फिक्स किया गया। रोगी को कुछ दिनों तक हॉस्पिटल में भर्ती रखा गया ताकि स्टेंट सही तरह से स्थापित किया जा सके। ह्रदय के आसपास व फेफड़ों में हुए संक्रमण व मवाद को छाती में डाली गयी ट्यूब से बाहर निकाल सके। रोगी का छोटी आंत में अलग से रास्ता खोला गया। लगभग दो माह तक रोगी को इसी तरह से खाना दिया गया। रोगी जब एक माह के बाद दिखाने के लिए आया तब उसकी जांच की गयी और उसके स्टेंट एवं फीडिंग जेजुनोस्टॉमी को निकला गया। रोगी अब स्वस्थ है।

राजेन्द्र भट्ट समाज भूषण तथा प्रो. शिवसिंह राठौड़ समाज रत्न से विभूषित

उदयपुर (वि.)। जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ डीम्ड टू बी विश्वविद्यालय के 36वें स्थापना दिवस पर कोरोनाकाल के दौरान पूरे देश में भीलवाड़ा को मॉडल के रूप में प्रस्तुत करने पर संभागीय आयुक्त राजेन्द्र भट्ट को समाज भूषण तथा प्रशासनिक सेवा में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले डॉ. शिवसिंह राठौड़ को समाज रत्न अलंकरण से कुलपति प्रो. एस. एस. सारंगदेवोत, कुल प्रमुख बी. एल. गुर्जर, रजिस्ट्रार डॉ. हेमशंकर दाधीच ने शॉल, पगड़ी, उपरणा, सम्मान पत्र से सम्मानित किया।

प्रो. सारंगदेवोत ने कहा कि 1937 में तीन रूपये व पांच कार्यकर्ताओं के साथ शुरू की गई यह संस्था आज 50 करोड़ के वार्षिक बजट, एक हजार कार्यकर्ता व 10 हजार विधार्थियों के साथ हर रोज नित्य नये आयाम स्थापित कर रही है। संस्थान ने विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए पिछले पांच वर्षों में शिक्षा, शोध, विस्तार और आधारभूत ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन किए है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाने के उद्देश्य से विद्यापीठ 100 गांवों को गोद लेगा और उनमें रोजगारोन्मुखी सेन्टर स्थापित कर वहां के युवाओं को प्रशिक्षित कर आत्मनिर्भर बनाने का कार्य करेगा। भंवरलाल गुर्जर ने कहा कि संस्था का स्थापना से ही उद्देश्य ग्रामीण अंचलों में शिक्षा-दीक्षा के प्रचार प्रसार रहा है। संचालन डॉ. हरीश चौबीसा ने किया जबकि आभार डॉ. हेमशंकर दाधीच ने ज्ञापित किया।

जिंक फुटबॉल अकादमी ने इलीट यूथ कप जीता

उदयपुर (वि.)। जिंक फुटबॉल अकादमी की अंडर-16 टीम ने अहमदाबाद में आयोजित इलीट यूथ कप के पहले संस्करण का खिताब जीत लिया।

जिंक फुटबॉल अकादमी के मुख्य कोच तरुण राय ने कहा कि वेदांता-हिंदुस्तान जिंक लि. के सीएसआर इंटरवेंशन-जिंक फुटबॉल अकादमी ने इस इवेंट में अपने सभी चार लीग मैचों में जीत हासिल की। टीम ने पहले सेसा फुटबॉल अकादमी गोवा को 6-0 से, एआरए एफसी गुजरात को 10-0 से, स्पोर्ट्स मानिया फुटबॉल अकादमी को 7-2 से और उसके बाद संस्कारधाम स्पोर्ट्स क्लब अकादमी को 7-0 से हराया। यह टीम लीग टेबल में अजेय रही। जिंक फुटबाल अकादमी के खिलाड़ियों-जांगमिंगथांग हाओकिप और संदीप मरांडी लीग स्तर पर टॉप स्कोरर रहे। इन दोनों ने छह-छह गोल किए जबकि उदयपुर स्थित इस अकादमी के एक अन्य खिलाड़ी आशीष मेला को बेहतरीन प्रदर्शन के आधार पर प्लेअर ऑफ द टूर्नामेंट चुना गया।

तरुण राय ने कहा कि खिलाड़ियों ने टूर्नामेंट में जिस तरह का प्रदर्शन किया, उस पर गर्व है। आने वाले आयोजनों के लिए जरूरी आत्मबल और मोमेंटम हासिल करने के लिए यह जरूरी था कि हम नए साल की सकारात्मक शुरुआत करें और हमारे लड़कों ने वैसा ही किया।

ट्रेंड्स अब प्रतापगढ़ में भी

उदयपुर (वि.)। भारत की सबसे बड़ी और तेज़ी से बढ़ती एपेरल और एक्सेसरीज की रिलायंस रिटेल की स्पेशलिटी चेन, ट्रेंड्स ने प्रतापगढ़ में अपना स्टोर लांच किया है। ट्रेंड्स ने भारत में मेट्रो, मिनी मेट्रो, टियर 1, 2 शहरों और छोटे-छोटे कस्बों में ग्राहकों तक अपनी पहुंच और संपर्क को मजबूत कर फैशन को घर-घर पहुंचाया है और यह भारत की मनपसंद फैशन की जगह है। प्रतापगढ़ में ट्रेंड्स स्टोर को आधुनिक शैली से बनाया गया है। यहां क्वालिटी और फैशन का सामान किफायती दामों पर मिलेगा। छह हजार वर्गफुट में फैला यह स्टोर प्रतापगढ़ का पहला स्टोर है जहां ग्राहकों को खास ऑफर मिल रहे हैं।

डॉ. छतलानी को सर्वश्रेष्ठ सॉफ्टवेयर अनुसंधान और विकास विश्लेषक का सम्मान

उदयपुर (वि.)। हाई रेंज राष्ट्रीय सम्मान द्वारा जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ के डॉ. चंद्रेशकुमार छतलानी को सर्वश्रेष्ठ सॉफ्टवेयर अनुसंधान और विकास विश्लेषक से विभूषित किया गया है।

डॉ. छतलानी ने विभिन्न वाणिज्यिक, अकादमिक व अन्य

क्षेत्रों के 140 से अधिक सॉफ्टवेयर व वेबसाइट का निर्माण किया है। इन कार्यों को सफलतापूर्वक संपन्न करने हेतु डॉ. छतलानी को यह सम्मान प्राप्त हुआ है। कुलपति प्रो. एस. एस. सारंगदेवोत ने कहा कि डॉ. छतलानी की प्रतिबद्धता, गूढ़ चिंतनशीलता, अथक परिश्रम और कर्त्तव्य परायणता उन्हें कई क्षेत्रों में सफल बना रही है। डॉ. छतलानी ने कई स्तरीय शोध कार्य भी संपन्न किए हैं। उन्होंने 9 पुस्तकें लिखी हैं और 7 पुस्तकों का संपादन किया है।

स्मार्ट क्लासरूम्स का उद्घाटन

उदयपुर (वि.)। एचडीएफसी बैंक के परिवर्तन प्रोजेक्ट ने प्रदेश के 29 सरकारी स्कूल्स में स्मार्ट क्लासरूम्स का शुभारम्भ किया। इस पहल के तहत एचडीएफसी बैंक राज्य शिक्षा बोर्ड के साथ मिलकर सरकारी स्कूलों को डिजीटल बनाने के लिए काम कर रहा है। इसके अलावा बैंक ने पाठ्यक्रम आधरित ई-लर्निंग सामग्री वितरित करने के लिए कक्षाओं में डेस्कटॉप्स और प्रोजेक्टर्स जैसे आईटी इन्फ्रास्ट्रक्चर्स स्थापित किए हैं। इसके अलावा बैंक ने इन स्कूलों के अध्यापकों को भी डिजीटल इन्फ्रास्ट्रक्चर के बारे में प्रशिक्षित किया है। मुख्य अतिथि राज्य के शिक्षा मंत्री माननीय बी.डी. कल्ला ने इस पहल का शुभारम्भ किया। छह से बारह कक्षा तक के करीब 12,000 से अधिक विद्यार्थियों को गणित, विज्ञान और अंग्रेजी जैसे जटिल विषयों को दिलचस्प तरीके से इन डिजीटल कक्षाओं में पढ़ाए जाने की उम्मीद है।

एचडीएफसी बैंक की ग्रुप हैड कॉरपोरेट सोशल रेस्पोंसिबिलिटी सुश्री आशिमा भट ने कहा कि स्मार्ट क्लासरूम स्कूल में एक इंटरेक्टिव सीखने का माहौल तैयार करने के लिए 'टेक्नोलॉजी इन एज्यूकेशन' को और भी सक्षम बनाता है। इसके मूल में एक 'मल्टीमीडिया डिवाइस' है जो एक एज्यूकेटर टूल की तरह काम करता है, जो सीखने के तरीके को और भी आकर्षक और इन्टरेक्टिव बना देता है, इस डिवाइस को शिक्षक केन्द्रित दृष्टिकोण के आधार पर तैयार किया गया है।

कार्गो शिपमेंट शुरू

उदयपुर (वि.)। सी कोस्ट शिपिंग सर्विसेस लि. एक अग्रणी कंपनी जो निर्यातकों और आयातकों को एक ही छत के नीचे लॉजिस्टिक्स की सुविधाएं देती है और इस कंपनी ने बीएसई को सूचित किया है कि वह संयुक्त उद्यम के लिए चर्चा कर रहा है।

कंटेनर्स की कमी, अंतर्राष्ट्रीय विपदा के कारण वैश्विक स्तर पर समुद्री मार्ग से सामना भेजने की गतिविधियों में असमान्य रूप से वृद्धि हुई है। हाल ही में एग्रो ग्रुप और सब सहारन अफ्रीका स्थित ग्रुप द्वारा संयुक्त उद्यम संबन्धी प्रक्रिया शुरू की गई। एग्रो ग्रुप भारत से दालों के आयात और फर्टिलाइज़र्स के निर्यात हेतु जहाज के बोझ को कम करने के लिए सी कोस्ट शिपिंग से चर्चारत है। विशेष प्रयोग हेतु मुंद्रा पोर्ट को लदान के लिए एक लॉजिस्टिक्स हब के रूप में देखा जा रहा है, जिसकी 12,000 मेट्रिक टन से अधिक क्षमता है। कंपनी के ब्लू चिप ग्राहकों में अडानी, आदित्य बिड़ला, वेलस्पन, जीएमसी प्रोजेक्ट्स आदि हैं।

डॉ. श्रीमाली को देवपुरा स्मृति सम्मान

उदयपुर (वि.)। साहित्यांचल संस्था, भीलवाड़ा के साहित्यांचल शिखर सम्मान समारोह 2021 के अन्तर्गत श्री भगवतीप्रसाद देवपुरा स्मृति हिंदी सेवी सम्मान आकाशवाणी के पूर्व निदेशक डॉ. इन्द्रप्रकाश श्रीमाली को संगम विश्वविद्यालय के वाईस चांसलर डॉ. करूणेश सक्सेना ने प्रदान किया गया।

खतरे के दौर में चुनाव

- डॉ. वेदप्रताप वैदिक -

भारत के पांच राज्यों में चुनाव की घोषणा हो चुकी है। यह चुनाव-प्रक्रिया एक माह की होगी। 10 फरवरी से 10 मार्च तक! ये चुनाव उत्तरप्रदेश, पंजाब, उत्तराखंड, गोवा और मणिपुर में होंगे।

इन पांचों राज्यों के चुनाव का महत्त्व राष्ट्रीय चुनाव की तरह माना जा रहा है, क्योंकि इन चुनावों में जो पार्टी जीतेगी, वह 2024 के लोकसभा चुनाव में भी अपना रंग जमा सकती है। दूसरे शब्दों में ये प्रांतीय चुनाव, राष्ट्रीय चुनाव के पूर्व राग सिद्ध हो सकते हैं। इन पांचों राज्यों में यों तो कुल मिलाकर 690 सीटे हैं, जो कि विधानसभाओं की कुल सीटों का सिर्फ 17 प्रतिशत है लेकिन यदि इन सीटों पर विरोधी दलों को बहुमत मिल गया तो वे अगले लोकसभा चुनाव में भाजपा के लिए बड़ी चुनौती बन जाएंगे।

चुनाव आयोग ने इन चुनावों की घोषणा करते हुए बड़ी सावधानियों का परिचय दिया है। उसने अभी एक हफ्ते के लिए रैलियों, प्रदर्शनों, सभाओं, जत्थों आदि पर प्रतिबंध लगा दिया है लेकिन मुझे लगता है कि यह प्रतिबंध आगे भी बढ़ेगा, क्योंकि जिस रफ्तार से महामारी फैल रही है, यह चुनाव स्थगित भी हो सकता है। आयोग ने अपने सभी चुनाव कर्मचारियों का टीकाकरण कर दिया है लेकिन करोड़ों मतदाताओं से महामारी-प्रतिबंधों के पालन की आशा करना आकाश में फूल खिलाने जैसी हसरत है।

हमने पहले भी बंगाल और बिहार के चुनावों में भीड़ का बर्ताव देखा और पिछले एक-डेढ़ माह से इन राज्यों में भी देख रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि अगले हफ्ते का प्रतिबंध खुलते ही महामारी का दरवाजा भी खुल जाए।

हो सकता है कि प्रतिबंधों को आगे बढ़ाया जाए और राजनीतिक दलों से कहा जाए कि वे लाखों की भीड़ जुटाने की बजाय चुनाव-प्रचार डिजिटल विधि से करें ताकि लोग घर बैठे ही नेताओं के भाषण सुन सकें! यह सोच तो बहुत अच्छा है लेकिन देश के करोड़ों गरीब, ग्रामीण और अशिक्षित लोग क्या इस डिजिटल विधि का उपयोग कर सकेंगे?

यह ठीक है कि इस विधि का प्रयोग उम्मीदवारों का खर्च घटा देगा। सबसे ज्यादा खर्च तो सभाओं, जुलूसों और लोगों को चुनावी लड्डू बांटने में ही होता है। इससे भ्रष्टाचार जरुर घटेगा लेकिन लोकतंत्र की गुणवत्ता भी घटेगी। हो सकता है कि इन चुनावों के बाद डिजिटल प्रचार, डिजीटल मतदान और डिजीटल परिणाम की कुछ बेहतर व्यवस्था का जन्म हो जाए।

चुनाव आयोग यदि इस तथ्य पर भी ध्यान देता तो बेहतर होता कि पार्टियां मतदाताओं को चुनावी रिश्वत नहीं देती। पिछले एक माह में लगभग सभी पार्टियों ने बिजली, पानी, अनाज, नकद आदि रुपों में मतदाताओं के लिए जबर्दस्त थोक रियायतों की घोषणा की है। यह रिश्वत नहीं तो क्या है? जो लोग करदाता हैं, उनकी जेबें काटने में नेताओं को जरा भी शर्म नहीं आती। आम लोगों को इसी वक्त ये जो चूसनियां बाटी गई हैं या उनके वादे किए गए हैं, आयोग को उस पर भी कुछ कार्रवाई करनी चाहिए थी।

मैं स्वयं पर खुद ही हंस रहा हूं

- लक्ष्मण बोलिया -

मद्रास हाईकोर्ट ने एक निर्णय में कहा है कि हंसना मूलभूत अधिकार और कर्त्तव्य दोनों ही है। हम हंसने और हास- परिहास का समर्थन करते हैं। मज़ाक करना एक मौलिक अधिकार है।

अक्सर देखा जाता है कि कुछ लोग मामूली सी बात पर ही दुखी और नाराज हो जाते हैं ; इतने अधिक कि हंसना ही छोड़ देते हैं। दुनियाभर में आपको कहीं भी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा जिसकी मृत्यु अधिक हंसने के कारण हुई हो; इसके विपरीत बहुत सारे ऐसे व्यक्ति अवश्य मिल जाएंगे जिनकी मृत्यु इसलिए हुई क्यूंकि वे हंसते नहीं थे।

प्रसिद्ध विचारक माईकल प्रिटचार्ड ने कहा है, आप बूढ़े होजाते हैं इसलिए हंसना बंद कर देते हैं जबकि सही यह है कि आप हंसना बंद कर देते हैं इसलिए बूढ़े होजाते हैं।' जीवन में हंसना उतना ही जरूरी है जितना खाना-पीना और सांस लेना। यदि आप हंसना भूल गए तो तय समझिए कि आप जीना भूल रहे हैं। क्यूंकि हंसना किसी दवा से भी ज्यादा असरकारक होता है।

लार्ड बायरन ने भी कहा है, 'आपको जब भी हंसने का मौका मिले आप जरूर हंसें क्यूंकि यह एक सस्ती और कारगर दवा है। किसी व्यक्ति को तबतक नहीं समझ सकते जबतक आप उसे हंसा नहीं सकते।' वैसे भी हमें यह तो स्वीकार करना ही होगा कि हंसने की कोई भाषा नहीं होती है और ना ही हंसना कोई रोग है।

मदर टेरेसा का भी यही कथन है कि हंसने से फेफड़े खुल जाते हैं और फेंफड़े खुल जाने से आत्मा खुल जाती है।

एल्सा मैक्सवेल के 'इससे पहले कि कोई आप पर हंसे, आप खुद-ही-खुद पर हंसले' कथन का अनुसरण करते हुए मैं स्वयं पर खुद ही हंस रहा हूं।

ओम् आनंद.....

(पृष्ठ तीन का शेष)

उसके अध्ययन के अभाव के कारण ही विद्वान चुप-मौन रहे और मैं उन्हीं के बीच उनसे बतियाते, सुनते, गुनते लोकग्रही चितेरा किंवा चित्रसेन बन अपनी खाली प्याली भरता भरोसेवान बना रहा।

विद्वान् मेरी किसी बात से सहमत नहीं हैं, यह तो सबको ही लग गया। मुझे तो स्वामीजी ने बुलाया और परचा पढ़ने को कहा तब ही यह अहसास हो गया था पर जाने का मोह पाले रहने के कारण स्वामीजी से पुन: पूर्व वाली आत्मीयता के सूत्र जोड़ते जो नाराजगी मैं समझे बैठा था उसे रफादफा करना तथा विद्वानों के बीच मीरां विषयक मेरे कामधाम की जानकारी देना भी था और यदि उनकी ओर से कोई प्रश्न-प्रतिप्रश्न आता तो उससे सम्बन्धित सटीक जानकारी यदि मेरे पास नहीं है तो फिर से प्राप्त करने की भरसक कोशिश करने का था।

स्वामीजी ने बाद में मुझे कहा भी था, 'यार महेन्द्र! तेरी 'निर्भय मीरां' पढ़कर मैं कई तरह के विचारों में डूब गया। हम विद्वान वहां तक नहीं पहुंच पाते इसीलिए तेरे काम को उतना महत्त्व भी नहीं देते। असहमत होने में किसी का क्या कुछ बिगड़ता है पर विद्वानों के पास कोई काट नहीं है असहमति प्रकट करने का। यह तो लगा ही कि तेरे को बुलाने पर हमारे 60-70 विद्वान व्यर्थ हो जाते हैं।'

चित्तौड़ में 15 एवं 16 नवम्बर 2009 को वहां के मीरां स्मृति संस्थान ने तुर्रा कलंगी ख्यालों की कार्यशाला आयोजित की। इसमें मैंने अपने उद्घाटन उद्बोधन में कहा कि राजस्थान में ख्यालों की यह परंपरा चित्तौड़ से प्रारंभ हुई और तुकनगीर तथा शाहअली मेवाड़ के ही निवासी रहे तब मेवाड़ की सीमा बयाना से मंदसौर तक फैलाव लिये थी।

इस कार्यशाला में तुर्रा तथा कलंगी कलाकारों ने वह समग्र गायकी मंचित की जो इन ख्यालों में प्रयुक्त हुई मिलती है। आजादी के बाद भी यह गायकी ज्यों-की-त्यों अपनी परंपरा को पुष्ट किये है। मैंने उसमें किंचित भी बदलाव नहीं पाया। प्राय: कार्यशालाओं में वैचारिक दृष्टि से ही अधिक भागीदारी होती है। उनका मंचीय पक्ष गौण रहता है। इस कार्यशाला में इसका उल्टा रूप ही अधिक देखने को मिला अत: मैंने सुझाव दिया कि-

(1) प्रदर्शनधर्मी कलाओं का संरक्षण-मंचन घर फूंक तमाशा देखने जैसा है अत: वे ही कलाकार इस क्षेत्र में अग्रणी बनें जो समग्र रूपेण अपना हित साधने वाले न हों।

(2) उस्ताद एवं कलाकार केवल परंपरा से ही चिपके न रहें। समय एवं परिस्थितियों के अनुसार वे अपनी इस धरोहर में भी बदलाव लायें और जीवनमूल्यों को बचाये रखें।

(3) संस्कृति-संरक्षण की दृष्टि से सरकार इन विधाओं तथा उनसे जुड़े कलाकारों को समृद्ध बनाने के लिए भरपूर सहयोग दे। यथोचित सम्मान दे तथा अपने स्तर पर इनके प्रदर्शनों का आयोजन करे।

(4) सांस्कृतिक संस्थानों से कलाकारों का जुड़ाव हो ताकि आर्थिक सहयोग मिल सके और ये प्रदर्शनकारी रूप निरंतर गतिशील, प्रयोगगामी एवं प्रदर्शनधर्मी बने रहें।

(5) कलाकारों के साथ वैचारिक मंथन, संवाद आदि की दृष्टि से ऐसे आयोजन होते रहें।

स्वामीजी से तो मैं उसके बाद भी मिला जब मुझे मेरे साहित्यिक मित्र शिव 'मृदुल' तुर्राकलंगी ख्याल में जान फूंकनेवाले नक्काड़ावादक हरिराम नगारची से भेंट कराने उनके गांव धनेत लेगये पर वे वहां नहीं थे। फिर तो उनसे मिलना ही नहीं हो सका। हम पास के घोसुंडा चले गये जहां हमने कलंगी ख्यालों के शीर्षस्थ खिलाड़ी अकबर बेग से भेंट की। अकबर बेग जानेमाने उस्ताद खाजूखां के पुत्र हैं जिन्होंने कलंगी ख्यालों के अखाड़े को दूर-सुदूर तक रोशनी दी। उनके साथ ही तुर्रा ख्यालों के चित्तौड़ के उस्ताद चैनराम थे। दोनों समान रूप से अपनी शोहरत बनाये ग्राम्यरंजन के शीर्ष पर थे। मैंने दोनों से कई बार भेंट की। उनके प्रदर्शन भी देखे और कला मण्डल के लोकानुरंजन मेलों पर भी उनकी प्रस्तुतियां रखीं। एक पुस्तक 'राजस्थान के तुर्रा कलंगी' भी लिखी जो कला मण्डल से छपी।

अकबर बेग ने अपने अन्य खिलाड़ी-साथियों को भी बुलाकर हमें ख्याल-गायकी की बुलंदगी का रसास्वादन कराया। इनमें प्रमुख खिलाड़ी उस्मान ने तो अपनी उदात्त गायकी से कमाल ही कर दिखाया। उनकी आवाज सुन कई लोग इकट्ठे हो गये। उस्मान ने हमें अधर गायकी लावणी से भी परिचित कराया। इस गायकी में मुंह में माचीस की खड़ी तिली रख दोनों होठों को बिना मिलाये गाना होता है। पूरी लावणी में उन्हीं अक्षरों का प्रयोग होता है जिनके उच्चारण बिना होठ मिले होता है।

बाद में अकबर बेग हमें अपने घर लेगये जहां एक अंधेरे ओवरे में खाजूखां लिखित बड़े-बड़े चोपड़े रखे हुए थे। उर्दू में लिखे इन चोपड़ों से भी हमें कुछ भिन्न राग-रागनियों की बंदिशें सुनने को मिलीं। इस सारे माहौल से हमारे आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा। जाना कि किस तरह से उस्ताद और खिलाड़ी शौकिया रूप में ऐसे मनोरंजन के माध्यम से बिना किसी लाभ-लोभ-लालच के जीवन समर्पित किये अपने बड़ेरों से प्राप्त धरोहर को संरक्षित एवं सुरक्षित किये रहते हैं।

शिव 'मृदुल' ने बताया कि अकबर बेग उस्मान का प्रमुख खिलाड़ी है जो महिला पात्र में ख्याल प्रदर्शन की जान है। हरिराम ने इन्हीं अखाड़ों के साथ नक्काड़ा वादन के रूप में पिछले सात दशक से रंग जमाया है। नक्काड़े की आवाज सुनकर ही लोगों को अन्दाज लग जाता है कि तुर्रा-कलंगी ख्याल का मजमा जुड़नेवाला है। इसे देखने गांव-के-गांव उलट पड़ते हैं। बाजवक्त वहां पांव देने तक की जगह नहीं रहती है। हमारे साथ मेरी बिटिया डॉ. कहानी तथा जंवाईराज जितेन्द्र मेहता भी बड़ी तल्लीनता से इस रसभीने वातावरण में रसखान होते रहे। अकबर बेग ने हमें वह मेड़ी भी बताई जिसमें चौथमल मुनिजी महाराज ने चातुर्मास किया था। मुनि चौथमल दीक्षापूर्व इन ख्यालों के जानेमाने खिलाड़ी थे। घोसुंडा से प्रस्थान करते मृदुलजी ने बताया कि अब तो इन ख्यालों का उतार ही है। खाजूखां की तरह चैनराम के लिखे चोपड़े भी अब गुमनामी के अंधेरे में पड़े हैं। यदि समय रहते उनका उचित संरक्षण नहीं हुआ तो एक बहुत बड़ी अलभ्य संपदा से हम हाथ धो बैठेंगे।

मैंने कहा, राजस्थान में ऐसे ख्यालों की अंचलजनित अनेक विधाएं, रंगतें किंवा शैलियां प्रचलित रही हैं। कमोबेश सबकी यही स्थिति है। चित्तौड़ की तुर्रा-कलंगी बड़ी सशक्त विधाएं हैं। इन्हें मीरां स्मृति संस्थान चाहे तो उचित संरक्षण-संपादन कर प्रकाश में ला सकता है। अभी तो मीरांबाई के नाम-छाप के सैंकड़ों नहीं बल्कि लाखों पद देश के सभी प्रांतों में वहां की बोलियों, वाणियों में जनकण्ठों पर गाये जा रहे हैं, उनकी सुध भी उतनी ही जरूरी है।

इस पर शिव 'मृदुल' बोले, मीरां संस्थान के प्राण सत्यनारायण समदानी ने बहुत कोशिश की मगर वे चोपड़े उनके घरवाले ही उपलब्ध कराने को तैयार नहीं हैं और न वे स्वयं ही कुछ करने की स्थिति में हैं। हां, वे अपने पास रखी इस धरोहर को अति महत्त्वपूर्ण मानते हुए भी नहीं लगता कि कभी कोई वंशधर ठीक से उनके प्रकाशन-संरक्षण के लिए आगे आना चाहेगा।

स्वामीजी ओमानन्दजी से पहले और बाद में जिसने भी भेंट की उसने मेरी तरह यह महसूस किया कि समयानुसार वे अपनी वेशभूषा तथा कार्यक्षेत्र को अवश्य बदलते रहे पर अपनी प्रकृति और जीवनादर्श को लेकर वे सदैव एकमन दृढ़ निश्चयी रहे। यहां मुझे सहज ही डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित याद आ रहे हैं जिनसे मेरा सम्पर्क जब वे राजस्थान विवि जयपुर में रीडर थे तब से लेकर अंतिम समय तक रहा।

उन्होंने स्वामीजी के व्यक्तित्व का सटीक मूल्यांकन करते सत्यनारायण समदानी को लिखा था जिसका उल्लेख समदानीजी ने 'मीरायन' के किसी अंक में किया था। दीक्षितजी ने लिखा- 'वे पहले भी फक्कड़ स्वभाव के थे और आज भी हैं। दो टूक बात तब भी कहते थे, अब भी कहते हैं। वाणी में उनकी प्रखरता और दृढ़ता जैसी पहले थी वैसी ही अब भी है। नई और अपनी बात कहने का हौंसला उनमें सदा से था जो आज भी है। अर्थ-लोभ उन्हें न तब था और न आज है। सबकुछ भरापूरा होते हुए सबकुछ त्याग संन्यास धारण कर लेना और समाजसेवा में जीवन समर्पित कर देना सरल नहीं है जो स्वामीजी ने कर दिखाया। मीरां स्मृति संस्थान को साहित्यिक एवं प्रकाशकीय क्षेत्र में अपनी गतिविधियों से जो सम्मान दिलाया वह सब उनकी लगन, कर्मठता, आत्मनिरपेक्ष समाजसेवा और दूरदर्शिता का प्रमाण है।' अब तो स्वामीजी और दीक्षितजी दोनों ही स्मृति शेष हैं। स्वामीजी का 16 अक्टूबर 2018 को निधन हो गया। सच ही है, व्यक्ति चला जाता है मगर उसके द्वारा जनचेतनार्थ किये गये कार्य लम्बे समय तक प्रकाशस्तंभ की तरह अनेकों का मार्गदर्शन करते हैं।

राजस्थानी लोककलाओं का सर्वेक्षण (4)

- डॉ. महेन्द्र भानावत -

तुर्राकलंगी तथा रासधारी ख्याल :

तुर्राकलंगी तथा रासधारी ख्यालों के सम्बन्ध में विशिष्ट जानकारी प्राप्त करने हेतु चित्तौड़ के प्रसिद्ध तुर्रा समर्थक उस्ताद चेनराम गौड़ से राजस्थान में तुर्राख्यालों की परम्परा विषयक भेंट की गई। उन्होंने बताया कि लगभग 150 वर्ष पूर्व चित्तौड़ में सर्वप्रथम उस्ताद सहेडूसिंह ने इन ख्यालों को प्रचलित किया। उनके बाद रूपचन्द, छोटूलाल, खेमचन्द, चम्पालाल, मूलचन्द, ख्यालीलाल, गब्बूलाल, भवानीशंकर, हरिशंकर, रामसुखलाल

आदि तुर्रे के प्रसिद्ध समर्थक हुए। चित्तौड़ आज भी तुर्रा ख्यालों का प्रसिद्ध गढ़ माना जाता है। बसी के अमीरदीन तथा अब्दुलरहमान के पास कलंगी ख्यालों का अच्छा हस्तलिखित संग्रह है।

तेजा भारत :

यहीं के जमनालाल कलाल से तेजाजी का सुप्रसिद्ध भारत लिखा गया। यह भारत हर महीने की प्रति दशमी को यहां के खेड़े के तेजाजी की धाम पर गाया जाता है । यह धाम लगभग 725 वर्ष पुरानी कही जाती है। सर्प तथा कुत्ते द्वारा काटे जाने वालों का यहाँ शर्तिया इलाज होता है। तेजाजी के भारत में वर्णित तेजाजी को दिये गये वरदान में कहा गया है-'काला बाला रो, हड्क्या डस्या रो, उगले म्हारा नांव से तेजल थारा देवरा मुल़क-मुल़क में चालै थारी धाम तेजल खेड़ा-खेड़ा में थारी पूतली।'

भारत के अंत में छाप के रूप में कहा गया है- 'पेली म्हनै फूल माली गायो, गाई सुणायो पोकर री पेड्यां।' पीतल का अलगोचा में गायो पूरो करगी बजनोरावाली जाटण्यां। नारेल़ां मंडप थारो छायो। फूलड़ियां छाई थारी देवली। समदरियो अजरो भरियो ठेपां लागे तेजल थारी देवरी।'

वर्तमान में तेजाजी की इस धाम के भोपा मीठू लवार, धूप ध्यान करने वाले हजूर्यों में जगन्नाथ कुम्हार, नगजीराम तेली, गिरधारी लखारा, वरदा कुम्हार तथा तेजाजी गाने वाले खेल्यों में जमनालाल कलाल के अलावा नारायण कलाल, रामा हजूरी, छोटू हजूरी, भैरों लवार तथा कानू भील मुख्य हैं। भैरू सुथार खजांची तथा टोडू पुरोहित पंडित हैं । यह भारत ढोलक तथा मजीरों के साथ गाया जाता है।

रासधारी मण्डली :

बसी के पास पालका में रासधारी की प्रसिद्ध मण्डली है। इसका संचालन उदेराम खाती करते हैं । रासधारी में ये निर्देशन के साथ-साथ पार्श्वगायक एवं वादक का काम करते हैं। यहां के खिलाड़ी इस प्रकार हैं- शंकरदास (गणपत) छोगा सुथार (ब्रह्मा), बालू (स्वांगिया), उदा सुथार (हनुमान), रूपलाल नाई (राम), काना साधू (लक्ष्मण), वरदा भील (सीता), रघुनाथ धाकड़ (रावण), रत्ता भील (मंदोदरी), रामेश्वर (कुंभकरण)। यहाँ के मंदिर में रासधारी में प्रयुक्त गणपति, हनुमान, कुंभकरण, मृग, नृसिंह अदि के सुन्दर एवं आकर्षक लगभग 30 वर्ष पुराने चेहरे पड़े हैं। ये बसी के खैरादियों द्वारा बनाये गये हैं।

बसी के छगनजी खैरादी से बसी के लोकानुरंजन संबंधी सामग्री प्राप्त की गई । यहाँ होली पर आयोजित बारूद की भूंगलियों से खेला जाने वाला जमराबीज का ख्याल तथा देवझुलणी एकादशी को यहां के कुण्ड में आयोजित नारियलों का खेल विशेष उल्लेखनीय है।

कलंगी ख्याल :

निम्बाहेड़ा के कलंगी समर्थक उस्ताद गिरधारी जीणगर ख्यालों के अच्छे जानकार हैं। यहाँ कलंगी उस्तादों की परम्परा इस प्रकार है-हगदातखाँ-मगनीराम-नानालाल-नंदलाल-गिरधारी [वर्तमान]। जैन दिवाकर प्रसिद्ध मुनि चौथमल भी यहीं के कलंगी ख्यालों के माने हुए खिलाड़ी थे। अखाड़ों में मूलत: यहाँ चार अखाड़े रहे हैं- पंच भैया का अखाड़ा, बैरवा समाज का अखाड़ा, माहेश्वरी समाज का अखाड़ा तथा नानालाल मूलचन्द का अखाड़ा । पंच भैया का अखाड़ा अब नहीं चलता है। कालू तथा दलमीरखाँ इसके प्रसिद्ध खिलाड़ी थे । बैरवा समाज का अखाड़ा रामदेव तथा कालूराम की देखरेख में चलता है।

माहेश्वरी समाज अखाड़े का संचालन स्वयं गिरधारी करते हैं। नानालाल मूलचद अखाड़े के रामचंद्र बद्रीलाल प्रसिद्ध खिलाड़ी हैं। इन ख्यालों के लिए मोती चौक, रतन चौक तथा माणक चौक प्रसिद्ध हैं। तुर्रे के उस्ताद किसन दर्जी हैं।

घोसुंडा कलंगी का गढ़ कहलाता है। कलंगी ख्यालों की बेल यहीं से प्रारंभ हुई। यहां के खाजूखा कलंगी के जाने माने उस्ताद हैं । इन ख्यालों का प्रारम्भ लावणीबाजी से हुआ। प्रारम्भ में बैठकीय दंगल के रूप में नाना रंगतों में लावणियों की महफिलें प्रायोजित की जाती थीं। धीरे-धीरे यह रूप माच ख्यालों में परिवर्तित हुआ और तुर्रा-कलंगी ख्यालों की एक विशिष्ट शैली कहलाई। मिर्जा हसन बेग यहाँ के प्रसिद्ध खिलाड़ी हैं। चित्तौड़ तथा घोसुंडा में अब भी इन ख्यालों की बैठकें यदा कदा होती रहती हैं ।

विविध विवाह :

मेरी माताजी डेलूबाई लोकमंगलजनित अनेक पक्षों की जानकार थीं। समय-बेसमय पर मैंने उनसे भी अनेक तरह की सूचनाएं एकत्र कीं। उनसे विवाह सम्बन्धी ली गई जानकारी इस प्रकार है-

राजस्थान में विवाह को ब्याव तथा मांडा कहते हैं। विवाह प्रारंभ होने को मांडा मांडना, बरात को जान, बराती को जान्या, वर को वींद, वधू को वींदणी, बरात के ठहरने के स्थान को डेरा तथा जान्यावास, विवाह सम्बन्ध को सगाई, सगपण, ब्याह में आई औरतों को नूतारण्यां, लड़की के विवाह में आये पुरुषों को मांड्या, सगपण हुई लड़की को मांग कहते हैं। वधू पक्ष वाले जब अपने यहाँ बरात नहीं बुलवाकर स्वयं वर के गांव विवाह कराने चले जाते हैं तो वह बैठा मांडा कहलाता है। विवाह में यदि वर पक्ष वाले वर के रुपये लेते हैं तो वह देज तथा वधू पक्ष वाले वर पक्ष से वधू के जो रुपये लेते हैं वह दापा कहलाता है । प्रथम शादी के बाद जब कोई दूसरी शादी करने जाता है तो उस समय उसकी सतानें उसकी घोड़ी की मोरड़ी नहीं देखती हैं । घोड़ी चढ़ते समय उसकी लगाम वर की माता, बहिन अथवा भोजाई से पकड़ाई जाने का दस्तूर किया जाता है और वर के मोड़ पर कापड़ा वार कर सेवग को दे दिया जाता है।

विवाह के यहाँ कई रूप प्रचलित हैं। इनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं -

पेटे ब्याह : गर्भावस्था में ही जब आपस में एक दूसरे से सगपण कर लिया जाता है तो वह पेटे ब्याह कहलाता है। इसमें दोनों पक्षों के गर्भस्थ शिशु में से यदि एक के लड़का तथा दूसरे के लड़की जन्म लेती है तो यह विवाह पहले से ही तय करार दिया जाता है।

आटे-हाटे ब्याह : इसमें दोनों पक्षों के लड़के-लड़की का एक दूसरे के लड़के-लड़की के साथ विवाह कराया जाता है।

धर्मादा ब्याह : इसमें किसी किस्म का लेजदेज नहीं लिया जाता है ।

तीजे दकड्ये ब्याह : इसमें तीन पक्ष होते हैं । तीनों की लड़कियां एक दूसरे के लड़कों को ब्याई जाती हैं।

तुलसी ब्याह : जब पति-पत्नी दोनों मर जाते हैं तो दोनों पक्ष वाले अपने सम्बन्धों को स्थाई रखने के लिए तुलसी विवाह की रचना करते हैं । इसमें लड़के का पिता शालिग्राम (ठाकुरजी) की बरात ले जाता है, जिसके साथ लड़की का पिता तुलसी (पौधा) का ब्याह रचाता है ।

खेजड़ली ब्याह : तीसरी शादी करना अपशकुन माना जाता है। अत: तीसरा विवाह करने वाले से इस अपशकुन से बचने के लिए शादी करने जाने के पूर्व खेजड़ली के चारों ओर चक्कर लगवा दिया जाता है । मार्ग में यदि खेजड़ी नहीं मिलती है तो बोरड़ी के चक्कर लगवा दिया जाता है। कभी-कभी रस्म अदायगी के रूप में जेब में इनकी डाली रख दी जाती है । कई बार कपड़े की बनी ढूली (गुड़िया) जेब में रखली जाती है। इससे यह समझ लिया जाता है कि शादी के पूर्व तीसरी शादी मुड़िया से करा दी गई है।

पेड़-पौधों के साथ बंदर-बंदरी, तीतर-तीतरी, मोर-मोरनी, गधा-गधी, कुत्ता-कुत्ती, मुर्गा-मुर्गी और न जाने किन-किन जोड़ों के विवाह रचाने में लोगों की अपार रूचि देखने को मिलती है। इन प्रसंगों पर पूरे विधि-विधान से खर्च करने और दावत देने में भी आगे रहते हैं।

मांडलगढ़ में मींडों की लड़ाई :

लोकानुरंजन के विशिष्ट उत्सवों पर जानवरों की लड़ाई की भी राजस्थान में विशिष्ट परम्परा रही है। यह प्रायोजन मुख्यत: राजपरिवारों की ओर से किया जाता था। इसमें शेर, हाथी, सांड, मींडे तथा मुर्गे-मुगियों की लड़ाइयां विशेष उल्लेख्य हैं। कालान्तर में जब ये लड़ाइयां बंद हो गई तो कई जगह इनका स्थान स्वाँगों ने धारण कर लिया। इनमें मांडलगढ़ की मींडों की लड़ाई अत्यन्त

प्रसिद्ध रही है। यह लड़ाई महता सा. अगरजी ने प्रारंभ करवाई थी जो वर्तमान महता सा. अक्षयसिंह जी तक रही। इस लड़ाई में दो मींडे होते थे। दोनों के सिर पर नारियल बांध दिया जाता था और तत्पश्चात् उन्हें लड़ने के लिए ललकारा जाता था।

जब तक नारियल फूट कर चटकें-चटकें नहीं हो जाती तब तक यह लड़ाई चलती रहती थी। इसे देखने के लिए आसपास की जनता उमड़ पड़ती थी। मुख्यतया जन्मदिवस तथा मेहमानों के मनोरंजनार्थ ही इसका प्रायोजन किया जाता था। मुर्गों की लड़ाई भी यहाँ की प्रसिद्ध रही है। - **क्रमश:**

शब्द रंजन के
आगामी होली अंक के लिए
समस्यापूर्ति का विषय -
'का सखि होली! ना सखि ढूंठ'
रचनाकारों से विविध छंदी
रचनाएं आमंत्रित। - सं.

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक डॉ. तुक्तक भानावत द्वारा 352, कृष्णपुरा, सेंटपॉल स्कूल के पास, उदयपुर - 313001 (राज.) से प्रकाशित एवं मुद्रक लोकेश कुमार आचार्य द्वारा मैसर्स पुकार प्रिंटिंग प्रेस 311-ए, चित्रकूट नगर, भुवाणा, उदयपुर (राज.) से मुद्रित। सम्पादक : रंजना भानावत। फोन : 0294-2429291, मोबाइल - 9414165391, Email : shabdranjanudr@gmail.com, drtuktakbhanawat@gmail.com, सर्व विवादों का न्याय क्षेत्र उदयपुर होगा।